अध्याय - 6

सामन्तीय या चारण काव्य में प्रशस्ति का स्वरूप

सामन्तीय काव्य : एक पुनर्परिचय :-

आदिकालीन हिन्दी काव्य धारा का विवरण तैयार करने वाले यायावरी वृत्ति के खोजी विद्वान महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने पूरे आदि काल को सिद्ध - सामन्त काल की संज्ञा देते हुए इसकी अवधि 8वीं से 12वीं शती तक ठहराया है ।[1] अर्थात् 500 वर्ष के काल के बीच में जो वीरगाथाएँ अथवा चारणों द्वारा लिखित रचनाएँ रची गयी हैं और इन्हें सामन्तीय रचना कहना ही उचित होगा, स्यात् इसीलिए राहुल जी ने इस काल को सामन्त काल के नाम से इंगित किया है । यह बताने की शायद आवश्यकता नहीं है कि हिन्दी के इस समृद्ध काल को अन्य ऐतिहासिक आधार के अभाव में आचार्य शुक्ल ने 'वीरगाथा काल' नाम दिया था और 1050 सम्वत् से 1375 सम्वत् तक इस काल के विशेष विचार को व्याख्या भी किया था । बहुत दिनों तक, आज तक जो यह है कि सामान्य व्यवहार में आज भी आचार्य शुक्ल का ही काल - निर्धारण एवं नामकरण प्रचलित है । किन्तु बाद के अनुसन्धानों के प्रकाश में इस आदि काल के एकांगी नाम 'वीरगाथा काल' के स्थान पर उसके दो भेद और दो नामकरण करने पड़े । डा० रामकुमार वर्मा ने अपने हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में 'सन्धि काल' एवं 'चारण काल' दो नाम प्रस्तुत किए । यही 'चारण काल' 'सामन्त काल' है तथा यही अर्थ शुक्ल जी ने 'वीरगाथा काल' का लिया था ।

सामन्त काल पर इधर कुछ इतिहासकारों ने भी अपने विचार व्यक्त किए हैं जिनका साहित्य के विद्यार्थियों के लिए भी विशेष महत्व है । रोमिला थापर ने हिन्दी काव्य के 'सामन्त काल' को 8वीं से 13वीं शती तक माना है ।[2] और इसे अन्धकार युग की संज्ञा दी है । इसमें हिन्दू संस्कृति का ह्रास हुआ और विदेशी संस्कृति का विध्वंस हुआ परन्तु इस युग में निर्माण भी हुआ । यद्यपि सामन्त 1951 तक भारतीय घर - ग्राम में जीवित रहे किन्तु उनकी वह जीवन पद्धति जीर्णशीर्ण की धरोहर और

1- हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ ; पृष्ठ 43

2- भारत का इतिहास : पृष्ठ 218

काल का मुख मोड़ने वाली बन गई, 14वीं शती तक वो जीवित रही । राजपूतों की यह जीवन्तता ही राजस्थानी सामन्तीय काव्य में वर्णित है । इस राजस्थानी साहित्य के दो विभाग हैं -- (1) डिंगल साहित्य और (2) साधारण बोलचाल की राजस्थानी का साहित्य । डिंगल का साहित्य भण्डार बहुत विस्तृत है । वह प्रधानतया वीर और शृंगार रसात्मक है । डिंगल कविता मुख्यतया गीतों में है । गीत साहित्य डिंगल की एक विशेषता है । ये गीत विशेषतया ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बन्ध रखते हैं तथा इनमें इन लोगों की वीरता तथा उदारता पूर्ण परम्पराओं का वर्णन है । देवताओं की स्तुतियों के धार्मिक गीत भी बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं । साधारण राजस्थानी की जैन एवं जैनेतर रचनाओं के रूप में उपलब्ध है ।[1] जिसकी चर्चा यहाँ प्रासंगिक नहीं है ।

चारण कवियों की रचनाओं के आधार पर ही श्री कर्नल टॉड ने अपनी ऐतिहासिक कल्पना का संचयन 'राजस्थान का इतिहास' में किया है । पर यह नहीं भूलना है कि इन रचनाओं की विषय वस्तु में तथ्य मूलक ऐतिहासिकता से उतना सम्बन्ध नहीं है कि उन्हें इतिहास का दर्जा दिया जा सके । इस युग में सम्भवतः ऐतिहासिक पुरुषों के नाम पर काव्य लिखने - लिखाने का चलन उत्तर - पश्चिम सीमान्त से आने वाले आक्रमकों के सम्पर्क का परिणाम मानते हुए द्विवेदी जी यह स्वीकारते हैं कि 'भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही जिसमें काव्य निर्माण की ओर ध्यान अधिक था, विवरण - संग्रह की ओर कम । कल्पना - विलास का अधिक मान था, तथ्य निरूपण का कम । उल्लास - आनन्द की ओर अधिक झुकाव था, तथ्यों की ओर कम । इस प्रकार इतिहास को कल्पना के हाथों पराजित होना पड़ा ।'[2]

राजस्थानी साहित्य का विकास एवं उसके स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए वयोवृद्ध विद्वान् आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने यह माना है कि 'सामन्तों के समय तक विक्रमादित्य और भोज राज का वह स्वर्ण युग बीत चुका था । लक्ष- [illegible] की वृत्ति थी । राज दरबार में बैठे - बैठे पेचीदे चमत्कार पर 'पुरस्कार दो और दाद दो' [illegible] रणक्षेत्र में खड़े होकर ललकारते हुए वीरों में युद्धोत्साह भाव संघटन का समय नहीं था ।

1- सम्पादक - नरोत्तम स्वामी : राजस्थान दूहा : पृ० 42 - 43
2- सम्पादक - डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : पृथ्वीराज रासो : भूमिका : पृ० 9 - 10

और वीरोन्मेष भर देने की बेला थी । इन्हीं कारणों से हिन्दी के आदि युग में (चारण काव्य में) वीर प्रशस्तियों का प्रणयन हुआ । अधिकांश वीर प्रशस्तियाँ या गाथाएँ मौखिक रूप से ही कही - सुनी जाती रही । मौखिक रूप में वे जिह्वा के पथ पर दौड़ती हुई परिवर्तित और विकृत होती रहीं । पराक्रम प्रिय राजपूत जाति में राज कवियों के रखने की प्रथा थी । उन्होंने आश्रयदाताओं की प्रशंसा और पराक्रम की कविताएँ कीं । - - - - - आगे चलकर कुछ कविता वीर - देवताओं पर बनीं जैसे - हनुमान, दुर्गा, काली, नृसिंह आदि पर । इनमें यों तो भक्ति का उन्मेष था पर इन्हें वीर रस की कविताओं में ग्रहण कर सकते हैं । हिन्दी साहित्य में वीर रस की कविता का उत्थान तीन रूपों में हुआ है - एक रूप आदि काल में वीर प्रशस्तियों का है जिसमें वीर काव्य, वीर गीत और मुक्तक वीर कविताएँ आती हैं ।'[1] यही चारण कवियों की रचनाओं की प्रशस्ति मूलक साहित्य - सम्पदा थी ।

इस प्रकार डिंगल साहित्य में प्रतिपाद्य विषय के रूप में 'राजपूतों के जीवन चरित का वर्णन मिलता है, जिसमें ऐतिहासिक घटनाओं, तत्कालीन समाज की विभिन्न परिस्थितियों, युद्ध - वर्णन आदि के साथ ही साथ स्वयम्बर प्रथा का अद्भुत दृश्य, ऐतिहासिक चरित्रों तथा घटनाओं को आधार कर उनमें नवीन कल्पनाओं और भावों की अभिव्यंजना चारण काल की विशेषता है । इसमें राजाओं की कीर्ति प्रधान है । अपने नायक के युद्ध कौशल और सेना वर्णन के साथ साथ शत्रु की हीनता का भ्रमण चित्रण किया गया है । वीर गाथा कालीन कवियों का परम उद्देश्य अपने नायक के चरित्र का प्रशंसात्मक वर्णन है ।'[2]

आदिकालीन सामन्तीय काव्य की वे कृतियाँ जो चारण कवियों द्वारा लिखी गई थीं । निश्चित रूप से राजपूताने की एक निश्चित राजवंशीय परम्परा की प्रशस्ति गाथा बन का ही बखान हुई और इनके कृतिकार भी कुछ निश्चित वंशों के ही होते रहे, इसीलिए इस काव्य-धारा में आए हुए यथा: सलकभी-जो राजन्य ... प्रिय थे । ... वाली बात भी दिखाई पड़ जाती है तो कभी 'पारसर' ... जहाँ कर्म जहाँ स्वर: ' ...

- -

1- ' डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : हिन्दी साहित्य का अतीत : पृष्ठ - 56
2- डा० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव : हिन्दी साहित्य' का इतिहास : पृष्ठ 41 - 42

उससे बिचकने की आवश्यकता नहीं । जबकि सत्य यह है कि इन काव्यों का ऐतिहासिक आधार होते हुए भी इनमें सच्चे इतिहास की प्रामाणिकता संदिग्ध है । इतना सब होते हुए भी इस काल के जीवन और इस काल के काव्य की साहित्य सम्पदा का अपना पृथक महत्व है । इसका एक राष्ट्रीय महत्व है ।

'वीरगाथा काल का जीवन राष्ट्रीय सांस्कृतिक परम्परा की नैरपेक्षणीय कड़ी है । उसमें आस्तिकता के साथ आत्म विश्वास, त्याग के साथ भोग, भाग्य के साथ पौरुष, समर्पण के साथ स्वाभिमान, मोक्ष के साथ जीवनानुराग, परलोक के साथ इहलोक आदि विरोधी प्रतीत होने वाले प्रकरण सर्वत्र अनुभूत हैं । वह जीवन व्यापक एवं समृद्ध था । उस युग में जीवन आत्म - सम्मान का ही नाम था, इसलिए सम्मान हानि की अपेक्षा प्राणों की हानि स्वीकार्य समझी जाती थी । - - - - - वीरगाथा काल का भारतवासी जीवन और मरण दोनों में उत्साहित था क्योंकि उसको आत्म लाभ प्राप्त हो गया था । इस प्रवृत्ति पर रह कर, इसी पृथ्वी के उपकरणों से, इसी पृथ्वी वीरस्वर्ग बनाने की आकांक्षा यदि कहीं प्राप्त होती है तो भाषा के वीरगाथा काव्य में ही ।[1]

उस युग के जीवन के इन सिद्धान्तों को राजपूत राजाओं ने आचरणीय बना लिया था । उनमें स्वाभिमान, प्रजापालन, त्याग के साथ ही साथ भोग प्रियता और युद्ध प्रियता की उदात्त जीवन- वृत्तियां विद्यमान थीं । वीरगाथा कालीन राजपूती संस्कृति में अवैदिक धर्मों की उस मान्यता के लिए कोई स्थान नहीं था जिसमें उन्होंने संसार से पलायन करने की परम्परा का प्रवर्तन किया था । अतः इस काल के वीर धर्मी राजपूत भोग्य वस्तुओं को भोग योग्य बनाकर भोग करने के कायल थे । राजाओं के अन्तःपुर में दिव्यांगना सुन्दरियों का अभाव होता था तो विलास - पदार्थों, कलागत साधनों की भी भरमार रहती थी । वहां अलौकिक एवं वीर पुरुषों के जमघट के साथ - साथ अनुरूप वस्त्र -शस्त्रों, आभूषणों की झनक भी सुनाई पड़ती थी । सार्वजनिक रूप से इनका दर्शन उत्सवों, पर्वों एवं त्योहारों पर किया - कराया जाता था । पर यह भी सत्य है कि राजपूत राजा विलासान्ध न थे । स्व बाहु बल से अर्जित वस्तुओं का भोग करना ही उनके जीवन की सार्थकता एवं उद्देश्य था । उनमें सदा उचित - अनुचित का विवेक दिखाई पड़ता था, परनारी पर कभी - भी हाथ उठाना उनके

- -

1- श्री ओमप्रकाश : प्राचीन हिन्दी काव्य : पृष्ठ 11-12

लिए अशोभनीय माना जाता था पर चाहने वाली स्त्री के लिए रणांगन की हाथ-हत्या झेलकर उसे जीत लाना और भोगना उनके यश और कीर्ति का विषय था । नारी के विषय में वीरगाथाकालीन दृष्टि बहुत ही स्वस्थ थी -

'परभोषित पररै नहीं, ते जीते जग बीच ।
परतिय तक्कत रैन-'दिन ते हारे जग बीच ॥' (पृथ्वीराज रासो)

ये राजपूत लड़ाकू वृत्ति के थे । जिस राजपूत में जितनी ही अधिक भोग वृत्ति थी, वह उतना ही अधिक लड़ाकू था । राजपूती जिनगानी के दस्तावेज सामन्तीय काव्य में तो वीर एवं श्रृंगार रसों की फलवती में भी देखी जाती है । प्रणय पाती पाकर राजकुमार जीत कर ला रहा है, पालकी महल के द्वार तक पहुँचती भी नहीं है कि उस रात किसी शत्रु के आक्रमण का समाचार मिलता है । वीर राजपूत घोड़े पर बैठे, लगाम कर पुनः लड़ने के लिए चल पड़ता है । यह भी तत्कालीन राजस्थानी वीरों की वीर धर्मी जीवन - पद्धति जो सामन्तीय काव्य के अक्षर - अक्षर में उत्कीर्ण है । इस प्रकार सामन्तीय काव्य में जीवन की अनेक रूपता पूरी व्यापकता से प्रतिबिम्बित है ।

कवि एवं कृतियों का विहंगावलोकन :-

इस काल के प्रमुख कवियों में चन्दवरदाई, नरपति नाल्ह, जगनिक, दलपति विजय आदि रासो कारों का नाम लिया जाता है । 2500 पृष्ठों में 69 समयों में विभाजित विशालकाय रासो ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' का प्रणयन करने वाले कवि 'चन्द' का प्रभाव आज भी हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अक्षुण्ण है । चन्द हमारे यहाँ का चासर है और चासर की उत्पत्ति चन्द से 214 वर्ष पीछे हुई ।[1] यह चन्द या चन्द वरदाई, चन्द बलदिय नाम से भी ख्यात था । यह पृथ्वीराज का दरबारी कवि होने के साथ - साथ उनका मन्त्री, मित्र एवं सेना संचालन करने वाला तथा समर भूमि में उनके साथ लड़ने वाला भी था । हिन्दी साहित्य का इतिहास ऐसे वीर कवि को पाकर धन्य है, जो एक साथ तलवार का पानी चमकाता था और लेखनी की स्याही से प्राणोत्सर्ग के समारोहों का जीवन्त चित्र भी खींचता था । बताया जाता है कि वह चौहान

1- मिश्रबन्धु विनोद : भाग 1 : पृष्ठ - 109

नरेश का अन्तरंग व्यक्ति था जिसने शो गोरी के दरबार में पृथ्वीराज के साथ स्वयं प्राण देकर राजपूती आन - सम्मान की रक्षा की थी ।

जगनिक का नाम उसकी लोक वीरगाथा 'आल्हा' के आल्ह - खण्ड के कारण अमर है । यह आल्हखण्ड कुछ विद्वानों के विचार से 'परमाल रासो' का एक खण्ड मात्र है ।[1] पर इस आल्ह-खण्ड की भाषा अनेक गायकों के कण्ठ से होकर गुजरती हुई कई रूप धारण कर चुकी है । आज इसका वीर भाव मात्र शेष है और यह रचना अपनी मूल भाषा से अब बिल्कुल दूर हो चुकी है । आल्हा और परमाल रासो दोनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जगनिक महोबा के चन्देल राजा परमाल के दरबार में कोई व्यक्ति था । यदि रासो को आल्हा से अलग कोई प्रामाणिक ग्रन्थ माने तो यह भी कहा जा सकता है कि जगनिक कोई भाट था जो कवि होने के साथ - साथ एक चतुर दरबारी, राजदौत्य कर्म में निपुण तथा युद्ध में चन्द एवं कैमास जैसे वीरों के छक्के छुड़ाने वाला एक असाधारण योद्धा भी था ।[2] तब यह परमाल का समकालीन होगा ।

'आल्ह - खण्ड का सबसे पहला हिन्दी संस्करण इसके प्रथम संग्रहकर्ता स्वर्गीय इलियट साहब की अनुमति से मुंशी रामस्वरूप नाम के सज्जन ने छपवाया था पर इसकी कोई प्रति बहुत ढूंढने पर भी प्राप्त न हो सकी । इसको लोग असली आल्हा कहते हैं । इसके आधार पर उस समय के एक प्रसिद्ध अल्हैत पं0 भोला नाथ जी ने 'आल्हा खण्ड बड़ा' नाम से इसका एक स्वतन्त्र संस्करण प्रकाशित किया । यह महोबा प्रान्त के अल्हैत थे और सम्भवतः इनके संस्करण की भाषा में महोबे की बोली का प्राधान्य स्पष्ट देख पड़ता है ।'[3] मिश्र बन्धुओं का यह विचार है कि महोबे का जगनिक चन्द का समकालीन था । उसने सबसे पहले आल्हा की रचना की जो अब तक ठौर - ठौर गांवों में गाया जाता है । पर इस समय के आल्हा में जगनिक का शायद एक शब्द भी नहीं मिलता, केवल ढंग उसका है ।[4]

जो भी हो आल्हा में महोबा के लोक विश्रुत बनाफर वीर आल्हा -ऊदल की

1- पं0 लक्ष्मीनारायणधर द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : पृ0-9
2- पं0 गणेशदत्त द्विवेदी : हिन्दी के कवि और काव्य : भाग 1 : संस्करण-1 : पृष्ठ- 33-54
3- हिन्दी के कवि और काव्य : पृ0 - 55
4- मिश्रबन्धु विनोद : भाग - 1 : पृष्ठ - 109

वीरता का वर्णन है । ये आल्हा - ऊदल वीर राजा परमाल के सामन्त थे । कुल मिला कर इन दोनों ने 52 लड़ाइयां लड़ीं थीं । महोबा का पतन हो जाने पर ये किसी वन में चले गए थे । इन्हीं युद्धों का अत्यन्त ओजपूर्ण भाषा में वर्णन जगनिक ने किया है । यह वर्णन सशक्त वीर गीतों वाली शैली में हुआ है । खेद की बात है कि इतना लोक प्रिय ग्रन्थ अपने वास्तविक रूप में प्राप्त नहीं है ।

'बीसल देव रासो' के रचयिता नरपति नाल्ह रासो काव्य परम्परा के एक प्राचीनतम कवि हैं, जिनकी रचना आज भी उपलब्ध है । बीसल देव रासो हिन्दी जगत की एक अमूल्य निधि है जो हमें आज से शताब्दियों पूर्व भारत की अनास्था का दिग्दर्शन कराने में समर्थ है । जहां इसमें कौतूहल पूर्ण ऐतिहासिक वाद - विवादों की पुष्टि होती है, ताम्रपत्रों, वंशावलियों तथा शिलालेखों के जांच की आवश्यकता पड़ती है, वहीं काव्यगत रस, अलंकार, छन्द तथा वस्तु वर्णन आदि की अभिव्यंजना का समावेश भी है । खेद है कि कुछ विद्वानों ने इस ग्रन्थ को काव्य की कसौटी पर भली - भांति न कस कर इसका साहित्यिक मूल्य न्यून रखा है ।[1] शुक्ल जी ने इसे कोई काव्य ग्रन्थ न मान कर केवल गाने के लिए रची गई एक रचना मात्र स्वीकार किया है ।[2] श्री सत्य जीवन शर्मा इसमें किसी भी साहित्यिक मूल्य का होना नहीं स्वीकारते ।[3] डा० उदयनारायण तिवारी मानते हैं कि न तो इसमें किसी प्रकार का साहित्यिक सौष्ठव है और न कहीं किसी प्रकार की साहित्यिक रोचकता मिलती है ।[4] इस बीसल देव रासो की दो में किसी प्रकार की प्रतियों के उपलब्ध होने की बात की जाती है । एक में तीन खण्ड और दूसरे में चार खण्ड बताए जाते हैं ।[5]

दलपति विजय और उनके 'खुमान रासो' का भी रासो काव्य की परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान है । खुमान रासो (ई० 870-900) के सम्बन्ध में आजतक निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सका है । खुमान रासो की जो प्रति मिली है, वह खण्डित है । शिवसिंह सरोज के अनुसार किसी अज्ञातनामा भाट ने कोई खुमानरासो लिखा था ।[6]

1- सम्पादक - डा० तारकनाथ अग्रवाल : बीसलदेव रासो : पृष्ठ - 71
2- हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृष्ठ - 30
3- बीसलदेव रासो : पृष्ठ - 43
4- वीर काव्य : पृष्ठ - 196
5- डा० अग्रवाल : बीसलदेव रासो : पृष्ठ - 60
6- भारतीय गौरव : पृष्ठ - 27

यह भी उल्लेखनीय है कि इसकी प्रतियों में राणा संग्राम सिंह तक के उल्लेख मिलते हैं। इसलिए वर्तमान रूप में यह रचना सम्वत् 1780 - 90 के पूर्व की नहीं हो सकती। इसमें न केवल खुमान अपितु उसके सम्पूर्ण वंश का चरित्र वर्णित है।[1]

चारण लिखित इन प्रबन्धमूलक सामन्तीय काव्यों के अतिरिक्त इस परम्परा में विद्यापति की 'कीर्तिलता' एवं 'कीर्ति पताका' को भी एक कड़ी के रूप में मानना समीचीन प्रतीत होता है। अतः यहाँ उस पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। विद्यापति की 'कीर्तिलता' अवहट्ठ भाषा की रचना है जिसमें अपभ्रंश भाषा के चरित काव्यों की परम्परा में कवि द्वारा काव्य सृजन किया गया है। - - - - कीर्तिलता कवि के आश्रयदाता कीर्तिसिंह की प्रशंसा में लिखा गया ऐतिहासिक काव्य है। कवि ने ऐतिहासिक तथ्यों को कल्पित घटनाओं एवं भावनाओं से धूमिल नहीं होने दिया है।[2] कुछ लोग इस कृति का महत्व केवल इसकी साहित्यिक प्रवृत्तियों तथा भाषा सम्बन्धी परिवर्तनों के कारण मानते हैं।[3] आचार्य मिश्र ने कवि विद्यापति के दो सामन्तीय काव्य का विवरण देते हुए लिखा है कि - "विद्यापति ने तिरहुत के राजा कीर्ति सिंह की कीर्ति का विस्तार करने के लिए दो पुस्तकें लिखी 'कीर्तिपताका' और 'कीर्तिलता'। कीर्तिपताका की उपलब्ध प्रति खण्डित है। यह प्रेम काव्य है पर कीर्तिलता वीरकाव्य है। असलान नामक नवाब ने तिरहुत के राजा गणेश्वर को पराजित किया, फिर असलान ने छल कर कपटाचार से राजा का वध कर डाला। पीछे पछतावा होने पर राज्य कीर्ति सिंह को सौंपना चाहा किन्तु कीर्तिसिंह ने राज्य लेना अस्वीकार कर दिया। वीरसिंह एवं कीर्तिसिंह दोनों सहोदर राजकुमार पितृ वैर के उद्धार के लिए जौनपुर इब्राहीम शाह के पास गए और असलान की मनमानी निवेदित की। शाह ने युद्ध हेतु सेना को असलान पर चढ़ाई का आदेश दिया। सेना पूर्व की ओर न चलकर पश्चिम की ओर चलती जान पड़ी। समय अधिक लगता देख कीर्ति सिंह के साथी साथ छोड़ने लगे। अन्त तक केशव और सोमेश्वर ही साथ रहे। - - - - - - कीर्तिसिंह ने असलान को पराजित करने का उत्साह प्रदर्शित किया और सुल्तान की आज्ञा से सेना ने साथ दिया। गण्डक पार कर उस सेना ने असलान

- -

1- डा० माताप्रसाद गुप्त : रासो साहित्य विमर्श : पृष्ठ - 17
2- पुरुषोत्तम असोपा : आदिकाल की भूमिका : पृष्ठ - 146 - 147
3- शिवकुमार शर्मा : हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : पृष्ठ - 85

की सेना से घमासान युद्ध किया । वीर सिंह और कीर्ति सिंह का शौर्य असलान की सेना संभाल न सकी । सेना की दुर्गति देख असलान कीर्ति सिंह पर झपटा और द्वन्द्व युद्ध में दोनों रक्तदिग्ध हो गए । किन्तु अन्त में असलान पराजित होकर भागा । कीर्तिसिंह ने भारतीय योद्धा की भाँति भागते पर शस्त्र - प्रहार नीति-विरुद्ध कह कर उसे छोड़ दिया ।[1] कीर्तिसिंह की इसी वीरता से कीर्तिलता काव्य का कलेवर मण्डित है ।

इन रचनाओं का पुनर्स्मरण इसलिए किया गया कि यही चारण काव्य और सामन्तीय काव्य की भाव धारा को वहन करती हैं । इसके अतिरिक्त वे रचनाएं भी इस अध्याय के अध्ययन के क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं जिनका उल्लेख इस शोध-प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में 'वीर काव्य' शीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका है । अतः कृति एवं कृतिकार पर और अधिक विवरण प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है ।

चारण अथवा वीर काव्यों की दुर्लभता :-

हिन्दी साहित्य के इतिहास में जिसे वीर काव्य, वीरगाथा, सामन्तीय काव्य, चारण काव्य, डिंगल काव्य कहा गया है, उसकी आदिकालीन कृतियां अर्थात् 14वीं शती तक रचे गए ग्रन्थ अब बहुत कम ही सुलभ हैं । काल प्रवाह में वह कर वे लुप्त हो गए । काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, आमेर शास्त्र भाण्डार आमेर (जयपुर), साहित्य-शोध-भवन जयपुर, अभय जैन शास्त्र भाण्डार बीकानेर, श्री अगरचन्द नाहटा के निजी पुस्तकालय, पुराना पोथी खाना जयपुर दरबार, प्राच्य विद्यासंस्थान जोधपुर (जयपुर शाखा) आदि की खोज-बीन करने से यह निष्कर्ष सामने आया है कि पूर्णता एवं समग्रता के विचार से केवल तीन चारण काव्य सुलभ हैं - पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो (आल्ह खण्ड) तथा बीसल देव रासो । यह भी चिन्त्य है कि इनके पाठ एवं इनकी प्रामाणिकता भी संदिग्ध ही है । अतः प्रामाणिकता के विषय में साधिकार कोई वक्तव्य दिया ही नहीं जा सकता, यह एक अलग शोध का विषय है ।

1- हिन्दी साहित्य का अतीत : पृष्ठ - 122-23

आदिकालीन काव्य का लगभग 50 वर्षों से लगातार गवेषणात्मक अनुशीलन करने वाले विद्वान अगरचन्द नाहटा ने बताया कि आज एक भी रासो काव्य या तत्-युगीन वीर काव्य अपने मूल रूप में सुलभ नहीं, हाँ उनमें से दुक्के के कतिपय छन्द 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में पाए जाते हैं ।[1] साहित्य सम्मेलन में कुछ वार्ताओं एवं वचनिकाओं की पाण्डुलिपियाँ भी मिली हैं । इस प्रकार उपलब्ध सामग्री को आधार मान कर यह अध्याय लिखा जा रहा है ।

वीर रस की प्रधानता :-

आदिकाल का चारण अथवा सामन्तीय काव्य राजस्थानी माटी की वीर प्रसू दीप्ति का जीवन्त दस्तावेज है । इसके लिखने वाले ये चारण, भाट, मागध, सूत, रसोधी एवं ब्राह्मण तथा ब्रह्म भट्ट जाते हैं अपने वाले राजस्थानी वैतालिक और कीर्तिक मिलती है आर्य संस्कृति की जयपताका फहराने वाले राजपूतों के पौरुषेय कर्मों के अविमान चित्र । यह भी उल्लेखनीय है कि राजपूताना के सामन्तीय जीवन की दरबारी परम्परा में पहले डिंगल काव्य रचना पर चारणों का प्रभाव था, परन्तु बाद में जब उसका महत्व बढ़ गया तो ढाढ़ी, ब्राह्मण, मोतीसार, राजपूत, सेवग आदि जातियों के लोग इसमें कविता लिखने लगे । x x x x x चारण अपने जिन आश्रयदाताओं की प्रशंसा लिखते थे, उनके सम सामयिक हुआ करते थे और बहुधा आप बीती तथा आँखों देखी घटनाओं का चित्रण करते थे ।[2]

डिंगल अथवा चारण काव्य का जन्म वीर धर्मा राजपूत जाति के देश में हुआ था । इस माटी के कण-कण में राजस्य दर्प का दर्पगर्भित था । राजपूताना का समूचा वायु मण्डल 'वीर भोग्या वसुन्धरा' का मन्त्रोच्चार करता रहा था । यही कारण है कि चारणों की वाक्-रचना में आकार वान होने वाली कविता वीरता के व्यावहारिक एवं मुक्त रूप की वास्तविकता को सार्थकता देकर जीवन का निर्द्वन्द्व शंखनाद करती थी जिसके स्वर - लहरियों पर न केवल राजपूत अपितु वीरांगना राजपूतनियाँ भी वीरता के वेग में झूम - झूम पड़ती थीं --

---

1- श्री नाहटा जी से व्यक्तिगत साक्षात्कार में यह तथ्य सामने आया है ।
2- संपादक - मोतीलाल मेनारिया : डिंगल में वीर रस : पृष्ठ - 19

'धव धावाँ धड़िया धणाँ हेलो आवे दीठ ।
मारगियो पंथूर वाण लीलो रंग मजीठ ॥ 1 ॥
पिउ केसरियाँ पट किया, हूँ केसरियाँ चीर ।
नाहक लायो चूंदड़ी बलती बेला वीर ॥ 2 ॥
पंथी ऐक संदेसड़ो बालम नै कहियाह ।
जायाँ थारा न बज्जिया, टामक टह टहियाह ॥ 3 ॥'[1]

जहाँ की रमणीय धवला - मुखी की आभा - धावों में धड़ल्ले के साथ नारियाँ - नई नवेलियाँ चटक चुनरी त्याग कर जीवन पर मर मिटने के लिए योगिनियों के समान मजीठ के लाल रंग वाले वसन धारण कर, केसरिया वस्त्र पहन कर वीर वेश वाले अपने वीर - वीरानों एवं पतियों के समान समरांगण का स्वागत करने को सन्नद्ध थीं, वहाँ के जीवन में वीर भाव के अतिरिक्त किसी अन्य संवेदना के लिए गुंजाइश ही कहाँ रह सकती है ? यदि अन्य हुआ भी तो वह शृंगार जो सदा वीरता का ही उद्रेक करता था । माना भी गया है कि डिंगल में वीर रस के अतिरिक्त रसों के अन्तर्गत भी प्रशस्ति का ही स्वर अनुस्यूत है । चारण यदि रुक्मिणी के वेणी - बन्धन का शृंगार प्रधान चित्र खींचता हुआ सम्भवतः स्वच्छन्द प्रशस्ति का ही स्वर टेरता दिखाई पड़ता है । फूल देकर गुँथी हुई रुक्मिणी की चोटी मानों जग को पवित्र करने वाली जमुना सी फिर है और मस्तक - मध्य सँवारी हुई माँग मानो आकाश स्थित आकाश गंगा है -

'कबरी सिरि गुम्फित कुसुम करवित,
जमुन पैम पावन्न जग ।
उत्तमंग सिरि अम्बर आयी अधि,
माँग संवारि कुआँर मग ॥'

राजस्थानी डिंगल की आदिकालीन काव्य - धारा में आयातित वीर नायकों में जहाँ भी, आलम्बन एवं देश के प्रति उत्कट आस्था थी वहाँ वे उन्मुक्त भाव से जीवन भुज को ऐन्द्रिक स्तर पर रससुख बनाकर भोगते थे । इन उभय कर्तव्य में उनका आधार वीरता एवं पौरुषेय आचरण ही था । क्षत्रियों के हृदय में यह धारणा बद्धमूल थी कि

1- डिंगल में वीर रस : पृष्ठ 25 - 26

उनके सृजन के समय ही भगवान ने उनकी वृत्ति युद्ध निश्चित कर दी है । पृथ्वीराज रासो में पंजून राव कछवाहे का कथन है कि सृष्टिकर्ता ने क्षत्रियों को उनके जन्म के समय तलवार धारण किए सृजा थी, अतः असि संचालन में नैपुण्य प्राप्त करना मात्र ही उनका सर्वस्व है -

'करतार हथ्थ तारवार दिय इह सुतत्र रजपूत करि ।'[1]

परमाल रासो (आल्ह खण्ड) के अन्तर्गत नर नाहर आल्हा का वक्तव्य है कि क्षत्रिय होने के कारण न तो मैं कृषि - कार्य कर सकता हूँ और न वाणिज्य के द्वारा ही जीविकोपार्जन कर सकता हूँ, माँगने से मेरा धर्म नष्ट होता है । अतः स्रष्टा ने क्षत्रियों के सृजन के काल में उनके साथ करवाल बाँध दिया था जिससे वे युद्ध-भूमि में युद्ध कर वीरगति प्राप्त करना ही अपने जीवन का महत् उद्देश्य समझते हैं ।[2] यही कारण है कि राजपूताने की गौरव - गाथा को समादर देने वाले ये वीर धर्मा राजपूत युद्ध को ही मोक्ष का साधन मानते आये हैं । उन्हें सच्चा एवं शुद्ध रक्त वाला राजपूत माना ही नहीं जाता रहा जो समर भूमि की चर्चा को सुनकर प्रोत्साहन के साथ नाच न उठें -

'जंग वचन सुनि कै नहिं नच्चय ।
ते रजपूत धरम नहिं सच्चय ।।'[3]

चन्द्र द्वारा रचित पृथ्वीराज रासो में चामुण्डराय एवं रावल समर सिंह ने यह प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया है कि राजपूतों के दोनों हाथ मोदकों से परिपूर्ण हैं । यदि युद्ध स्थल में वे वीरगति प्राप्त करते हैं तो सुर पुर का वह सुख सुलभ होता है जो अप्सराओं का वरण करने पर उनके लिए ध्रुव है और विजय वैजयन्ती प्राप्त करने से उनकी लोक - कीर्ति उजागर होती है ।[4]

युद्ध एवं वीरता विषयक इस उदात्त भावना के कारण राजपूतों के यहाँ रण - प्रयाण के अवसर पर प्रथम विवाह के समान मंगलोत्सव का महान आयोजन किया

1- पृथ्वीराज रासो : मो0 2/747/449
2- डा0 राजपाल-शर्मा' : हिन्दी वीर काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति : पृ0-73
3- पृथ्वीराज रासो : डा0 2535/191
4- हिन्दी वीर काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति : पृष्ठ - 75

जाता रहा है । लगातार चल रहे युद्ध के कारण वीरांगनाओं का सुहाग एवं वैधव्य आँख मिचौनी खेलता हुआ उनमें वज्रादपि कठोरता और कुसुमादपि कोमलता का विलास - वैभव एक साथ खेलता रहता था । पति के युद्ध स्थल वासी हो जाने पर हाथ की चूड़ियों की क्या सुरक्षा ? इस साहस एवं संवेदना की झाँकी दिखाते हुए आल्ह -खण्डकार जगनिक लिखता है -

'रोज लड़ाई जिनको रन में तिनको कह चुरियन की आस ।'[1]

चारणों का महत्व :-

इस काव्य में जो पौरुष एवं जीवन्तता है वह पूर्ववर्ती काव्य में भी इतनी तीखी अनुभूति के साथ सुलभ नहीं और इसके ही प्रभाव से परवर्ती वीर काव्यों में 'पुरुषोचित दर्शन' को अधिक प्रस्फुटित होते दिखाई पड़ती है । इसे हम अपनी भाषा का प्रधान साहित्य कह सकते हैं । यह मुख्यतया वीर रसात्मक है, पर श्रृंगार और शान्त रस की रचनाएं भी कम नहीं हैं । इसी साहित्य के कारण राजस्थानी साहित्य की इतनी अधिक सराहना देशी - विदेशी विद्वानों ने की है । विशेष कर चारण कवियों की रचनाएं ही उक्त वर्ग के अन्तर्गत आती हैं ।[2] यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि राजस्थान के राजपूत राज्यों में चारण का स्थान बहुत ऊँचा था । चारण ही इतिहासकार, चारण ही राजकवि और चारण ही मन्त्री भी हुआ करते थे । अतः राजपूत राजाओं के आश्रय में रह कर जितना लिखा उतना जैन यतियों के अतिरिक्त किसी ने नहीं । राजा के जन्म की बधाई गायी तो चारण ने, राज्याभिषेक का गीत गाया तो चारण ने, विवाह का मंगल गान गाया तो चारण ने, सौन्दर्य की, गुण की, कायरता की, वीरता एवं दानशीलता की आलोचना की तो चारणों ने । राजपूतों के जीवन में चारण प्राण बनकर समाया हुआ था ।[3] सारांश यह कि राजपूती दर्प के ये गाथा काव्य मूल रूप में चारणों की लेखनी के ही पैदावार हैं, प्रेरणा एवं परिपाक में तो क्षत्रिय संस्कार की प्रबलता थी ही ।

1- आल्ह - खण्ड : आ0 435/16/
2- मनोहर प्रभाकर : राजस्थानी साहित्य और संस्कृति : पृष्ठ - 34
3- वही : पृष्ठ - 37 - 38

चारणों का यह राजस्थानी साहित्य हिन्दी के आदिकाल की सम्पदा है। इस काल की प्रथम धारा अपभ्रंश कवियों की थी जिनमें जैन सिद्ध और नाथों की रचनाएं आती हैं। जिनकी प्रशस्ति भावना पर 4थे और 5वें अध्याय में विचार किया जा चुका है। हिन्दी साहित्य के उद्भव काल की दूसरी मुख्य प्रवृत्ति वीर रसात्मक एवं प्रशस्ति मूलक चरित काव्य की रचना है। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहासकार यह मानते हैं कि हिन्दी का उद्भव कालीन साहित्य मूलतः राजस्थान के चारणों द्वारा लिखा गया है और उसमें तत्कालीन चरित नायकों की शौर्यपूर्ण गाथाएं ही आबद्ध हैं। अब यह भी स्पष्ट हो चुका है कि रासो नाम की सभी रचनाएं आदिकालीन ही नहीं, उसका बहुत बड़ा भाग परवर्ती है। जो भी हो यह ध्यातव्य है कि हिन्दी के आदिकाल में प्रशस्ति मूलक चरित काव्य मुख्यतया राजस्थान में लिखे गए हैं। राजस्थान की वीर प्रसू भूमि ने यदि एक ओर अप्रतिम शौर्य सम्पन्न वीरों को जन्म दिया तो दूसरी ओर वहां विशाल साहित्य का भी सृजन हुआ। चारण तथा चारणेतर साहित्य से भिन्न कवि विद्यापति इस युग के उल्लेखनीय कवि हैं। अतः उनकी रचनाओं में कीर्तिलता और कीर्तिपताका पर भी विस्तार से विचार किया गया है।[1]

राजपूतों के महद् जीवन मूल्य :-

आदिकाल में हिन्दी काव्य के विकास की पूर्ववर्ती परम्परा संस्कृत कवियों की थी, यह स्पष्ट किया जा चुका है। संस्कृत में प्रशस्ति मूलक चरित काव्य का प्रारम्भ बाणभट्ट के हर्ष चरित से होता है। उसके पश्चात् पदम् गुप्त के नवसाहसांक चरित, जल्हण के विक्रमांक देव चरित, जयानक के पृथ्वीराज विजय, रुद्र के राष्ट्रौढ़वंश, वाक्पति राज के गौड़वहो, हेमचन्द्र के कुमारपाल चरित, कल्हण के राजतरंगिणी, जल्हण के सोमपाल विलास, सोमेश्वर के कीर्तिकौमुदी, अरिसिंह के सुकृत संकीर्तन, चन्द्र सूरि के हम्मीर महाकाव्य, चन्द शेखर के सुरजन चरित आदि अनेक चरित काव्यों में प्रशस्ति भावना की औदात्त अनुभूति में लौकिक नरपतियों को उदात्त एवं महनीय, जीवन कथाएं कही गई हैं। हिन्दी में इस प्रकार महद् मूल्यों से मण्डित राजपूत राजाओं की चरितावली की विरुदावली बखानने का बोझ चारणों की ही रचनाओं

1- डा0 वासुदेव सिंह : हिन्दी साहित्य का उद्भव काल : पृष्ठ - 161

में पाया जाता है । इन वीर काव्य के प्रणेताओं के नायक राजा लोग ईश्वरीय अवतार न होकर समकालीन लोक - नरेश रहे । अतः उन्हें देशकाल और वातावरण के प्रतिबन्धानुसार अपने काव्य विवरणों में समकालीन जीवन के स्थान पर त्रेता एवं द्वापर के सामाजिक वातावरण को अवतारणा करने की विवशता नहीं रही । - - - - वीर काव्य प्रणेताओं का प्रतिपाद्य भक्ति पद्धति और दार्शनिक तथ्यों की मीमांसा अथवा नायिका भेद, रस - अलंकार आदि का निरूपण नहीं अपितु समाज के प्रति विविध नरेशों के विविध जीवन प्रसंगों को चित्रित करना रहा है -

"यद्वृत्ताः सन्ति राजानः तद् वृत्ताहि भवन्ति प्रजा ।" की उक्ति के अनुसार इन नरेशों के चरित समकालीन जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं । आलोच्य काल में युद्धों का कारण राज्य लिप्सा मात्र नहीं थी, अपितु उनमें शरणागत वत्सलता, प्रजा रक्षा, धर्म प्रचार, विचार और धर्म रक्षा ऐसे कारणों का प्राधान्य मिलता है जो राजनीति के स्थान पर उच्च प्रकार की सामाजिक धारणाओं से अनुप्रेरित है, नरेशों में देवी अंश मानना और अपने उचित - अनुचित राज्य कार्यों पर हर्ष - रोष व्यक्त करना आदि तथ्य जन - चिन्तन का स्वरूप स्पष्ट करते हैं । इस प्रकार मन्त्री और राज्याधिकारियों के निर्वाचन, विविध प्रकार के सैन्य उपकरण, दण्ड व्यवस्था, जौहर प्रथा और जागीरें प्रदान करना आदि ऐसे तथ्य हैं जिनके मूल में यद्यपि राजनीति विद्यमान है तथापि वे समाज के गठन से स्पष्ट सम्बन्धित हैं ।[1]

चारण प्रवृत्ति और चारण काव्य की व्यापकता :-

राज सम्पदा के उपभोग के भागीदार

चारण राजपूत संस्कृति के उन्नायक और उसके शृंगार भी थे । यथः प्रकाश का दिवान तान कर अपने अन्नदाता के गुणों को बढ़ा - चढ़ा कर कहना, गुणहीन होने पर भी उसे सर्वगुण सम्पन्न बतलाना चारण कवियों की सामान्य प्रवृत्ति थी जिसका इनकी रचनाओं में व्यापक रूप पाया जाता है । राजपूताने के राजवंशों से सम्बद्ध चारणों के विषय में यह मान्यता रही है कि वे कीर्ति के संचार - साधन थे — "चारयन्ति कीर्तिम् इति चारणः ।" राजपूती ठाट - बाट से रहने वाले ये चारण मूल रूप में राजस्थान के राजन्य वर्ग के ही एकमात्र याचक हुआ करते थे । यह भी सत्य है कि राजस्थान के राजपूतों की वंश परम्परा में इन चारणों के प्रति सदा श्रद्धा का भाव विद्यमान रहा ।

1:- हिन्दी वीर काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति : पृष्ठ - 48

प्रायः सभी छोटे - बड़े राजवंश की ओर से इन चारणों को जागीरें और गाँव दिए जाया करते थे जिसकी आय से ये पर्याप्त सुखी एवं सम्पन्न जीवन व्यतीत करते थे । राजपूताना में रहने वाला ऐसा कोई भी चारण कुल न होगा जिसके पास कुछ न कुछ भू - सम्पदा न रही । कहने का तात्पर्य यह कि ये चारण शताब्दियों से राजन्य वर्ग के राजसी जीवन में घुसकर उनके दैनन्दिन जीवन की छोटी - बड़ी बातों एवं व्यवहारों से पूर्णतया अवगत रहे । इसलिए राजपूती जीवन का स्पष्ट बिम्ब ग्रहण करने में इन चारणों ने बड़ी सफलता पाई है । इनके काव्य में राजपूताना का सांस्कृतिक इतिहास स्वर्णाक्षरों में अंकित है ।

सच तो यह है कि राजस्थान की लोक भाषाओं के उन्मेष के पीछे एक युग का इतिहास है जो उनके साहित्य में प्रकट हो रहा है । यह उस युग का इतिहास है जिसमें कि भौतिक आकांक्षाओं की चरम परिणति रण-भूमि पर भैरवों के समारोह में हुआ करती थी । रण वीरों की समर - केलि में उन्मत्तता की सी प्रखरता रहती थी । युद्ध के लिए उन्हें दो प्रकार का मद प्रेरित करता था — भूमि लोभ और भामिनी लोभ । इनमें से कभी एक का विलास प्रधान होता था कभी दूसरे का । कभी - कभी दोनों की संगति से एक नए संगम का प्रादुर्भाव होता था । निःसन्देह यह मदिरा बड़ी मँहगी पड़ती थी किन्तु तृषा की तृप्ति भी एक अनिवार्य रोग था । परिणामतः सामाजिक जीवन की धारा में राजाओं और सामन्तों का जीवन ही अपनी विशेष लहरों में अभिव्यक्त हुआ । सामान्य जीवन प्रायः उपेक्षित रहा । यही कारण है कि तत्कालीन कविता में सामन्तीय जीवन ही उद्वेलित हुआ । इस स्थिति का सूत्रपात हर्षवर्द्धन के पश्चात् हो गया था ।

यह समझना अनुचित होगा कि चारण - काव्य में वीर रस के सिवा और कुछ है ही नहीं । वीर रस का सम्बन्ध शृंगार रस से भी रहा और अनेक रस वीर के पोषक होकर चारण काव्य में प्रस्तुत हुए थे किन्तु उस काल में जिस के लिए सब कुछ था, वह था वीर भाव - उत्साह । इसी से चारण काव्य में उसी की प्रमुखता रही । सहयोगी रसों में शृंगार का उद्वेलन अद्भुत था, किन्तु वह केवल काव्य - प्रणयन के सम्बन्ध में प्रस्तुत नहीं हुआ था । जिस रण - भूमि का लोभ एक कारण था, उसमें भामिनी लोभ एक प्रेरणा थी । भामिनी एक ओर अपने प्रेमी के उत्साह में निहित रहती थी और दूसरी ओर अपने रति भाव । इसके अतिरिक्त वे वीर जो जनता के

वीर थे, किसी के पति, पुत्र और बन्धु भी थे । पत्नी, माता और बहिन के उत्साह से रण वीर का उत्साहवर्धन होता था किन्तु वीर रस की धारा श्रृंगार, वात्सल्य आदि की लहरों से भी पुष्ट होती थी । इस कारण चारण काव्य में इनका भी योग है लेकिन वीर को जितना सहयोग श्रृंगार रस का मिला, उतना और किसी का नहीं । - - - - कहीं - कहीं ऐतिहासिक और पौराणिक संकेतों ने इस काव्य की भूमिका को पुष्ट किया है किन्तु इन सबसे उसके मूल स्वर में वीर रस की परम्परा की प्रधानता में कोई बाधा प्रस्तुत नहीं होती ।[1]

अतः यह स्वीकारने में कोई तर्क करने की आवश्यकता नहीं कि चारणों द्वारा लिखे गए 'डिंगल - साहित्य में राजस्थान के सैकड़ों वर्षों के संस्कार, उसका संघर्षमय जीवन तथा उसका इतिहास प्रतिबिम्बित है और उसमें उनकी भावनाएं व्यक्त हुई हैं । देश - प्रेम, जातीय गौरव तथा आजादी के झंझावात बहुल संदेशों से यह लबालब भरा हुआ है । इस साहित्य में पटरानियों के अट्टहास, नायक - नायिकाओं के गुप्त मिलन और राजमहलों के विलास-वैभव का वर्णन नहीं है । इसमें है रणोन्मत्त राजपूत वीरों, मरणातुर राजपूत महिलाओं और रणांगन की रक्त-रंजित शयनस्था का भाव मय चित्र । यह साहित्य जीवन का साहित्य है और सदा जीवन को लेकर आगे बढ़ा है । यह ऐसे लोगों का साहित्य है तथा ऐसे लोगों द्वारा रचा गया है जिन्होंने तलवार की चोटें अपने मस्तक पर झेली हैं, जीवन संग्राम में जूझ कर अपने प्राण दिए हैं ।[2]

<u>प्रशस्ति की सम्भावनाएं</u> :-

इस अध्याय में आदिकालीन डिंगल या सामन्तीय काव्य का जिन कोणों से अवलोकन किया गया है, उससे स्पष्ट प्रकट है कि यह काव्य राजस्थानी जीवन की तत्कालीन शैलती थाती है । सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा गौरव रूप से दार्शनिक स्थितियों का अपना - अपना सहयोग होता है । सभ सामयिक विशेष वातावरण के अनुकूल ही वहां की रचनाओं का सृजन हुआ जिन्हें सुविधानुसार नीचे लिखे गए ढंग से विभाजित किया जा सकता है[3]—

1- डा० सुरनाम सिंह शर्मा : राजस्थान - साहित्य : प्रगति और परम्परा : पृ० 28 - 30
2- मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृष्ठ - 63
3- डा० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव : डिंगल साहित्य : पृष्ठ - 12

(1) प्रशंसात्मक काव्य ।

(2) वीर काव्य ।

(3) भक्ति काव्य ।

(4) श्रृंगारिक काव्य ।

(5) इतर काव्य ।

इन पांच वर्गों में विभाजित काव्य में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय वर्ग के अन्तर्गत आयोजित डिंगल काव्य निश्चित रूप से उन मान्यताओं की प्रधानता से अनुप्राणित हैं जो प्रशस्ति काव्य की रचना के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करती हैं । प्रशंसा, वीरता, श्रृंगार का गुण - गान आदि सभी बातें इस शोध - प्रबन्ध में गृहीत प्रशस्ति के व्यापक अर्थ में अन्तर्भुक्त हो जाती हैं और तब इस बात की संभावना अधिक बढ़ जाती है कि वीर - न - ही वीर रस प्रधान डिंगल भाषा के सामन्तीय काव्य का मुख्य स्वर भी प्रशस्तिव्यंजना है । क्योंकि डिंगल साहित्य की रचना करने वाले रहे हैं चारण और भाट, जिनका प्रमुख कार्य अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा करना ही रहा । यही कारण है कि इस युग में प्रशंसात्मक काव्य को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सका है । विशेष उत्सवों में, पर्वों अथवा युद्ध के अवसरों में ये कवि राजा - महाराजाओं की विरुदावली का गान किया करते थे जिन्हें सुनकर अधिकतर काव्य नायक हर्षोल्लसित हो जाया करते थे और काव्य कर्त्ता को 'लाख पसाव' अथवा 'करोड़ पसाव' पुरस्कार स्वरूप दान करते थे । राजस्थान में इस प्रकार के काव्य को 'रार' संज्ञा दी गयी है ।[1] इस चारण काव्य की गंभीरता की छाप मात्र राजस्थानी संस्कृति एवं साहित्य की विशेषता है । इस काव्य का क्षेत्र यद्यपि राजस्थान था, किन्तु प्रान्तीय वर्चस्व के विचार से इसे भारतीय साहित्य की सर्वोत्तम थाती माना जा सकता है । वस्तुतः राजपूत भारतीय वीरता के प्रतीक थे और मध्य युग में राजस्थान वह दुर्ग था जिसमें भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के रक्षक निवास करते थे । यही कारण है कि मध्य युग में वीर राजपूतों ने स्वतन्त्रता की बलि वेदी पर मर मिटने में आनाकानी न की । ऐसे वीरों की उज्ज्वल कीर्ति राजस्थान के चारण काव्य में ही प्राप्त है ।[2] इस प्रकार चारणों की लेखनी से रचा गया राजस्थानीय भाषा का समस्त सामन्तीय काव्य अपनी आकृति में

1- डिंगल - साहित्य : पृष्ठ - 12

2- डा0 उदयनारायण तिवारी : वीर काव्य : पृष्ठ - 50

प्रशस्ति भाव की प्रधानता से अनुप्राणित है । भारतीय जीवन में इन रासो आदि ऐतिहासिक काव्य की गौरव शाली परम्परा है जिसका अपना पृथक एवं विशिष्ट स्थान है । यह भी स्पष्ट है कि वस्तुतः ऐतिहासिक काव्यों का उदय सामन्तवाद की देन है । भारतवर्ष में ईसा की दूसरी शती में ही स्तुतिपरक रचनाओं का निर्माण शुरु हो गया था ।[1] ऐसा नहीं कि विशाल काय प्रबन्ध रचनाएं या रासो काव्य ही इन प्रशस्ति मूलक भावों से मण्डित हैं, सच यह है कि प्रबन्ध रचनाओं के समान चारणों द्वारा लिखे गए गीतों एवं अन्य मुक्तक रचनाओं में भी राजस्थानी संस्कृति के वे ही रूप विकसित हुए हैं जिनमें सामन्तों की यशगाथा - दानशीलता, वीरता, युद्ध प्रियता, धर्म परायणता, वैभव - विलासिता के अनेकानेक बहुरंगी चित्र और उनका चारु-चित्य पूर्णरूपेण पाया जाता है । डिंगल के गीत साहित्य की सम्पदा की मीमांसा करने वाले विद्वानों ने भी इस बात को मुक्त स्वर से स्वीकार किया है कि "राजस्थान की संस्कृति में कवियों और विद्वानों का विशेष महत्व रहा है । यहाँ के शासकों ने जहाँ धरती और धर्म की रक्षा के लिए बहुत बड़ा त्याग किया है, वहाँ साहित्य के सृजन और उसकी रक्षा के कम महत्व नहीं दिया है । जहाँ तक डिंगल साहित्य का प्रश्न है, उसके सृजन में कुछ जातियों का विशेष योगदान रहा है । यहाँ के राजवंशों के साथ उनके संबंध सामाजिक स्तर, आचार-व्यवहार, जीवन के साधन तथा धार्मिक मान्यताओं आदि की जानकारी के अभाव में उनके कृतित्व का सही मूल्यांकन करना बड़ा कठिन है । गीत रचना में चारण, भाट, मोतीसर, सेवग आदि जातियों ने योगदान किया है ।[2] तात्पर्य यह कि गीतों के प्रणेता वे ही चारण हैं जो रासो काव्यों के रचयिता हैं और उनकी राजपूती परम्परा के प्रति वही आस्था यहाँ भी कार्य कर रही है । यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि चारण कवियों ने जिस डिंगल भाषा में काव्य रचना की थी उस डिंगल का अर्थ है डींग मारना । क्योंकि डिंगल काव्य में भाट लोग आश्रयदाता का अतिशयोक्तिपूर्ण यशगान करते थे फलस्वरूप उनकी भाषा को डिंगल की संज्ञा दी गई ।[3] निश्चित है कि ऐसी रचनाओं में प्रशस्ति या यशगान की अनेक पद्धतियों की ही अधिकता होगी ।

1- डा० शिवप्रसाद सिंह : कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा : पृष्ठ - 203

2- डा० नारायण सिंह भाटी : डिंगल गीत साहित्य : पृष्ठ 259 - 268

3- श्री देवीशरण रस्तोगी : हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास : पृष्ठ-26

उक्त सूचनाओं एवं तथ्यों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि चारणों द्वारा डिंगल भाषा में जो सामन्तीय काव्य - प्रबन्ध एवं मुक्तक रूप में आदिकाल के अन्तर्गत रचा गया है उसके परिवेश एवं उसकी परम्परा का अवलोकन करते हुए प्रशस्ति के जिन-जिन रूपों को उभरता हुआ देखा जाता है, उनमें निम्न रूपों की प्रधानता है —

(अ) स्तुति एवं आराधना ।

(ब) यशगान एवं महिमा निरूपण ।

(स) वीरता का वर्णन - दान वीरता, युद्ध वीरता, धर्मवीरता, दयावीरता आदि ।

(द) वैभव एवं सम्पदा प्रधान प्रशस्ति ।

(य) रूपात्मक प्रशस्ति ।

प्रस्तुत अध्याय में डिंगल भाषा में रची गयी चारणों की समस्त सामन्तीय बोध वाली कृतियों के कलेवर में प्रतिपादित प्रशस्ति का इन्हीं उक्त रूपों के सहारे सन्धान किया जायेगा । आदिकालीन सम्पूर्ण डिंगल काव्य को यद्यपि शैली के आधार पर प्रबन्ध एवं मुक्तक दो वर्गों में विभाजित किया जाता है पर विवेच्य धारा की अखण्ड रूप से विचार के प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाओं की प्रशस्ति-भावना का एक साथ निरूपण किया जाना समीचीन है ।

सामन्तीय काव्य में प्रशस्ति के विभिन्न रूप

वन्दना, प्रणति एवं आराधना :-

चारण काव्यों में चन्द कवि का 'पृथ्वीराज रासो' सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक चर्चित काव्य है । राजपूताने के राजवंश वर्ग में वीरता की आराधना की प्रधानता थी, अतः शक्ति और उसके अनेक रूपों की परिकल्पना करके भवानी, काली, जगदम्बा, दुर्गा आदि नाम देकर की गयी स्तुतियों एवं वन्दनाओं की भरमार है । अपने ग्रन्थ की सफल पूर्ति हेतु चन्द ने भवानी की आराधना करते हुए किया है —

'ॐकार नमो वरदानी सु कमला ।
कला रूपिनी कामदाई सु विमला ॥

कुमारी कल्यानी कमला कराली ।
जया, विजया, भद्रकाली, कंकाली ॥ 23 ॥
शिवा, शंकरी, विष्णु वामीस तोयं ।
वाराही, चामुण्डा, दुर्गा जोगिनीयं ॥
महालक्ष्मी मंगलास्त अंबी ।
महामाय पारबत्ती ज्वाल मुखी ॥ 24 ॥
x x x x x x
मीत वरन कारज चल्यौ जौ मात प्रसादे मीग ।
करि रासो प्रथिराज को किति चलाओ जोग ॥ 40 ॥'[1]

स्पष्ट है कि कवि ने नाम परिगणन शैली में शक्ति के अनेक रूपों का स्मरण करते हुए अपने मित्र पृथ्वीराज चौहान की कीर्ति - प्रसार हेतु रासो की रचना एवं उसके सुमंगल समापन का वरदान मांगा है । इसी प्रकार चण्डी एवं दुर्गा,[2] नवग्रह,[3] नवदुर्गा,[4] शिव[5] आदि की अनेक स्तवात्मक स्तुतियाँ एवं आराधनाएँ समय-समय पर चन्द कवि ने की हैं, जो उसकी आस्था एवं बहुदेवतावादी वृत्ति की परिचायिका हैं ।

पृथ्वीराज रासो में कतिपय वन्दना मूलक प्रशस्तियों के स्थल अपनी साहित्यिक सम्पदा एवं रचनात्मक औदात्य के कारण उच्च कोटि की साहित्य-सर्जना का प्रतिमान बन गए हैं, जिन्हें सामने रख कर पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों की कोमल - कान्त, वर्ण - सुखद शब्दावली का सहज ही स्मरण हो आता है । प्रस्तुत प्रसंग में उसके वर्णन के लोभ का संवरण कर पाना कठिन है । इस ऐतिहासिक रासो काव्य में इतनी परिष्कृत रुचि की रचना वन्दना एवं आराधना के सन्दर्भ में शायद दूसरी हो ही नहीं सकती । चन्द सरस्वती की वन्दना करते हुए लिखते हैं -

---

1- पृथ्वीराज रासो : समय 67 : दान बोध प्रस्ताव । छन्द संख्या 273 से 79 तक ।
2- वही : समय 12 : छन्द संख्या 83 ।
3- वही : समय 13 : छन्द संख्या 60
4- वही : समय 64 : छन्द संख्या 1975, 79
5- वही : समय 61 :

'मुक्ताहार विहार हार सबुधा, अबुधा, बुधा गोपिनी ।
सेस चीर सरीर नीर गहिरा, गौरी गिरा जोगिनी ॥
वीणा पाणि सुवाणि जानि, दधिजा हंसा रसा आसिनी ।
अम्बोजा चिहुरार भारज घना, विघना घना नासिनी ॥'[1]

(आदि कथा : छन्द संख्या 30)

'बीसलदेव रासो' द्वितीय सुख्यात रचना है, जो चारण काव्य के नाम पर आज सुलभ है । इस रचना में भी वन्दनामूलक प्रशस्ति के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं । कवि ने प्रारम्भ में ही गणेश की वन्दना की है और कहा है कि उसकी भूली हुई काव्य शक्ति को वे लौटा दें ताकि वह ग्रन्थ की रचना करने में समर्थ हो सके –

'दूधरइ कच्चइ गणपति गाइ ।
नवण करी नर लागुं जी पाइ ।
तोहि लंबोदर बीनवउं ।
सिद्धि नइ बुद्धि तणउ रे भंडार ।
चउथि करउं तुम पारणउ ।
भूलउ जो अक्षर आणिज्यो ठाँइ ॥ 2 ॥'[2]
x x x x x x
'गउरिका नंदन त्रिभुवन सार ।
नाद भेदइ मारइ उदर भंडार ।
एकदंतउ मुखि ललदलइ ।
मूंषाकउ वाहण तिलक सिंदूर ।
कर जोड़ी नरपति भणइ ।
जणि कारि रोहिणी तप्पइ सूर ॥
भुवण नइ देखउं रे रवि तलइ ॥ 2 ॥'[3]

वन्दना एवं आराधना मूलक प्रशस्ति के गान की यह भावना मात्र गणेश

1- डा० सुमन राजे : हिन्दी रासो काव्य परम्परा : पृष्ठ 84 पर उद्धृत ।
2- बीसल देव रासो : प्रथमारम्भ : गणेश वन्दना : छन्द संख्या - 2
3- डा० तारकनाथ बाली : बीसल देव रासो : पृष्ठ - 79

तक ही सीमित नहीं है। बीसल देव रासो के रचयिता नाल्ह ने माँ शारदा की भी वन्दना के गीत गाये हैं और उन्हें रिझाया भी है। सरस्वती का वन्दन - अभिनन्दन करते हुए नाल्ह कवि लिखते हैं :-

'हंस गमणि मृग लोयणी नारि ।
सीस समारइ दिन गिणइ ।
सतखिण ऊभी छइ राज दुवारि ।
नारनइ जोवइ चिहुं दिसइ ।
काइं रिसजी उलगाणां री नारि ।
जाइ दिखाल्उ रे सुरतां ॥ 3 ॥'[1]

हंस गमनि शारदा के वीणा पाणि उस रूप को भी सामने रखने का नाल्ह ने सुन्दर प्रयास किया है, जो कवियों का विशेष आराध्य है। साहित्यकारों की सृष्टि में सरस्वती के वीणा पाणि रूप की वन्दना के प्रति विशेष रुचि देखी जाती है, जिसकी यहाँ भी प्राप्त रक्षणा है -

'हंस वाहणि देवी करि धरइ वीण ।
कुंठइ कवित कहइ कुलहीण ।
वर देज्यो माता सारदा ।
भूलउ जो अखर आणि बहोडि ।
तइं तूठे अखर तुटइ ।
नाल्ह वखाणइ बे कर जोड़ि ॥ 4 ॥'[2]

लोग कहते हैं कि बीसल देव चतुर्थ इतिहास के अनुसार बड़ा वीर और प्रतापी राजा था। इसने मुसलमानों से कई लड़ाइयाँ लड़ी थीं और उत्तर - पश्चिम भारत में पुनः एक बार हिन्दू राज्य की स्थापना की थी। दिल्ली एवं झांसी प्रदेश भी इसने अपने राज्य में मिला लिया था। x x x x x हो सकता है कि नाल्ह कवि द्वारा रचित बीसल देव रासो इसी से सम्बन्धित रचना हो। यह भी उल्लेखनीय है कि जिस

1- सम्पादक - डा० माताप्रसाद गुप्त : बीसलदेव रास : संस्करण-3; छन्द संख्या - 3
2- सं० - माताप्रसाद गुप्त : बीसल देव रास : छन्द संख्या - 4

बीसल देव रासो को आदि काल की प्राचीनतम कृति माना जाता है उसमें वीर रस का तो सर्वथा अभाव है, श्रृंगार रस की ही प्रधानता है ।[1] यही कारण है कि रासो काव्यों में वीर रस प्रधान कृतियों की पंक्ति में बीसल देव रासो को नहीं बिठाया जाता है । फिर भी उसमें स्तवात्मक, सम्पदा मूलक तथा वन्दना एवं आराधना प्रधान प्रशस्ति के स्वर की अनुगूंज बार - बार सुनाई पड़ती है ।

रासो काव्य की परम्परा में जगनिक द्वारा रचित 'परमाल रासो' (आल्ह खण्ड) जितना लोकप्रिय है, उतनी लोकप्रियता चारणों की किसी भी कृति को प्राप्त नहीं है । किन्तु विभिन्न क्षेत्रों में लम्बे समय से लोकवाणी पर मंजते - मंजते इस रचना की भाषा का मूल रूप पूर्णतया लुप्त हो गया है । इस काव्य में भी वन्दना एवं स्तुति का गहन भाव देखने को मिलता है । जगनिक की 'सुमिरनी' लोक विश्रुत है । यहां उसका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है -

'सुमिरन करिके नारायण को, अरु गणपति के चरण मनाय ।
देवी मइये आदि भवानी, भूले अक्षर देहु बताय ॥
कोट कांगड़े की देवी की, सुमिरौं बार-बार सिर नाय ।
जिह्वा बैठो माइ सारदा, जाते काम सिद्ध ह्वै जाय ॥
धौलागिरि पर्वत की देवी, निस दिन पूजउं चरण तुम्हार ॥'[2]

जगनिक द्वारा लिखी गई अलौकिक प्रशस्तियों में 'गणपति' वन्दना विशेष उल्लेखनीय है । इसे भी 'सुमिरण' या 'मंगलाचरण' के रूप में प्रस्तुत किया गया है -

'प्रथमहिं सुमिरौं सैल सुता सुत,
के पद चित्त से बारम्बार ।
अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता,
जो बल बुद्धि के दातार ॥
विघ्न समूहन को नाशत हैं,
जन अपने पै करत सहाय ।

1- डा0. तारकनाथ बाली : बीसलदेव रासो : पृष्ठ - 79
2- आल्ह खण्ड : महोबे की लड़ाई : सुमिरनी ।

जिनके नाम मात्र से केवल,
प्रानी मन - इच्छा फल पाय ॥
दूजे सुमिरौं श्री जगदम्बा,
अम्बा, शम्भा को चित लाय ।
जाके सुमिरन के करते ही, सकल कामना सिद्ध हुइ जाय ॥
आदि शक्ति वेदन ने बरनी, जाको महिमा नाम अपार ॥'[1]

कवि दलपति का 'खुमान रासो' भी एक ख्याति प्राप्त रासो काव्य है । खुमान सिंह का एक नाम खुमान गहलौत भी था । यह चित्तौड़ (मेवाड़) का राजा था और 830 ई0 में आसीन था ।[2] इसके नाम से खुमान रायसा (रासो) बनाया गया था और 9वीं शती में लिखा गया था ।[3] इस काव्य में रचनाकार ने खुमान वंश की बेलि का यशस्वी चित्रण किया है । कवि दलपति विजय भी अपने युग एवं समय के कवियों की परम्परा को मानते हुए ग्रन्थ में जगदम्बा शारदा की वन्दना करते हैं और 'वयणवाचा' का वर माँगते हैं -

'आव माय अंबाव, भगति को जै भारत्ति ।
जाग - जाग जगदम्ब, हंत सनिध सारत्ति ॥
सुप्रसन्न होय सुराय, वयण वाचा वर दीजे ।
बालक बोले बांह, प्रीति भर प्यालो पीजे ॥'[4]

डिंगल के सामन्तीय काव्य में प्रधानता रासो काव्यों की ही है पर आदिकाल के कुछ अन्य कवियों ने भी सामन्तीय काव्यों का प्रणयन किया है । विद्यापति इसी कोटि के कवि हैं जिन्होंने अपने आश्रयदाता की विरुदावली गाने में कलम तोड़ दी है । उनकी 'कीर्तिलता' नामक रचना में गणेश, शंकर तथा सरस्वती की प्रशस्ति के वन्दना मूलक स्वर की प्रबल एवं प्रभावी व्यंजनाएं पाई जाती हैं । किन्तु इन छन्दों की भाषा संस्कृत है ।[5]

1- आल्ह खण्ड : कनवज्ज की लड़ाई : सुमिरण ।
2- कर्नल टॉड : राजस्थान का इतिहास : भाग-1 : कलकत्ता संस्करण : पृ0-240
3- वही : भाग - 2 : पृष्ठ - 757
4- सम्पादक : डा0 मोतीलाल मेनारिया : डिंगल में वीर रस : पृष्ठ - 33
5- डा0 बाबूराम सक्सेना : कीर्तिलता : प्रथम पल्लव : छन्द संख्या -1, 2 तथा 3.

अतः उनका इस अध्याय में उल्लेख करना संगत नहीं है । फिर भी यह स्वीकारना भी आवश्यक है कि कवि विद्यापति में भी वन्दना मूलक प्रशस्ति का भाव पुरजोर रूप में पाया जाता है ।

राजस्थानी साहित्य में लिखी गई चारण कवियों की आदिकालीन 'वार्ताओं' की भी अपनी महिमा है । इन वार्ताओं की कुछ प्रतियाँ साहित्य सम्मेलन प्रयाग के संग्रहालय में मिली हैं । इनमें भी देवी कोटि की प्रशस्ति पाई जाती है, जिनमें तापसों एवं देवताओं की स्तुतिपरक प्रशस्तियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं । इस कवि की 'चन्द कुँवर री वार्ता' में माँ सरस्वती की वन्दना की गई है और तब रचना का लिखना प्रारम्भ किया गया है –

'समरुं सरसत माय कुं गुणपत लागुं पाय ।
प्रताप सिंघ को आगज्या करि कथारस की कवि काय ॥ 1 ॥'[1]

इसी प्रकार इस कवि ने तापस के चरणों में राजकुमार चन्द्र कुंवर का प्रणाम निवेदित करते हुए लिखा है –

'दोय कर जोड़ नमायो सीस: ।
नमस्कार कीनौ नर ईस: ॥ 10 ॥'[2]

वार्ता साहित्यकारों में भद्रसेन की वार्ताओं का भी विशेष महत्व है । 'चन्द मलय गिरि वार्ता' उनकी प्रसिद्ध रचना है । इस रचना में भद्रसेन ने सरस्वती, गणेश आदि की वन्दना करते हुए 'चन्दन' की भी यशगाथा गाई है –

'स्वस्ति श्री विक्रमपुरे, प्रणवो श्री जगदीश ।
तन मन जीवन सुख करण, पूरण जगत जगीश ॥ 1 ॥
वर दायक दर सतोमति, विस्तारक गुणमाल ।
प्रणमो मनधरि मोद सुं, हरण विघन सभाल ॥ 2 ॥

1- चन्द कुँवरि री वार्ता : छन्द संख्या - 1
2- वही : छन्द संख्या - 10

मम उपगार परमगुर, गुण अक्षर दातार ।
बन्दौं ताके चरण युग, भद्रसेन मुनि सार ॥ 3 ॥
कँह चंदन, कँह मलयगिरि, कँह सायर कँह नीर ।
कहि हैं ताकी वार्त्ता, सुणउ सवै बरवीर ॥ 4 ॥'[1]

आदिकाल के इस वार्ता साहित्य में किसी अज्ञात नामा कवि की लिखी 'फूल जी फूल मती री बात' नामक एक रचना की पाण्डुलिपि प्रयाग साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय में देखने को मिली है । इस रचना में भी सरस्वती की बड़ी सश्रद्ध वन्दना की गयी है । कवि कहता है –

'सरसत माइ नमण कर, मागू एही पसाइ ।
आलेय विघन हरियौ सकल, कीरति करुं बनाइ ॥'[2]

चारण तथा चारणेतर कवियों द्वारा लिखे गए रासो, चरित तथा वार्ता काव्यों में प्रशस्ति - भावना का जो निरूपण हुआ है उसके भीतर बहुदेवता वादी प्रवृत्ति के प्रकाशन के रूप में राजपूतों की वैष्णव धर्म सम्बन्धी श्रद्धा का स्पष्ट आभास मिलता है किन्तु प्रधानता शक्ति उपासना या शाक्तमत की ही देखी जाती है । फिर भी सरस्वती, गणेश, ईश्वर, पार्वती, भवानी, विष्णु आदि देवी - देवताओं की वन्दना की व्यापक पृष्ठ-भूमि पर इस धारा के कवियों की वन्दनाबद्ध प्रशस्ति का स्वर मुखर है ।

आदिकालीन काव्य धारा में लिखे गए जैन काव्यों में जिनेश्वर एवं सरस्वती की ही वन्दनाएं अधिक हैं । सिद्ध - नाथों की बानियों में सिद्धों की वन्दना का स्वर प्रधान है और कहीं - कहीं शंकर की भी वन्दना के गीत गाए गए हैं । सारांश यह है कि इस श्रद्धा मूलक काव्य में प्रधान देवताओं की प्रतिष्ठा पृथक-पृथक है ।

<u>यश एवं प्रताप वर्णनाश्रित प्रशस्ति</u> :-

चारण एवं सामन्तीय कवियों के द्वारा लिखित वीर काव्य ने संस्कृत काव्य परम्परा को न अपनाकर संस्कृतेतर काव्य शैली को अपनाया ।

1- चन्दन मलयगिरि वार्त्ता : छन्द संख्या - 1, 2, 3 तथा 4
2- फूल जी फूल मती री बात : वन्दना (प्रारम्भ) ।

इसका मुख्य कारण यह था कि वीर काव्य लोक काव्य था । - - - - - इस युग के कवि केवल राजसभा के ही रत्न नहीं बने हुए थे, प्रत्युत राज्य व्यवस्था तथा युद्ध आदि में सक्रिय भाग लेते थे । इस युग का चारण राजा का मन्त्री, मित्र, पण्डित एवं ज्योतिषी भी होता था तथा उनका स्वामिभक्त सैनिक भी; एक हाथ में तलवार तथा दूसरे हाथ में लेखनी लेकर वह जन-जन में जीवन संचार करने पर तुला हुआ था । यही कारण है कि हिन्दी साहित्य में सबसे सजीव और स्वाभाविकतापूर्ण काव्य वीर काव्य ही है, उसमें चमत्कार भी मिलेगा परन्तु उसी स्तर का जिसको कि सामान्य जनता भी समझ सके । वीर काव्य मठों या राज्य सभाओं में बैठ कर नहीं रचा गया, प्रत्युत उत्सव या युद्ध आदि के अवसरों पर गाया गया है ।[1] इसलिए इनमें आश्रयदाताओं के यश एवं प्रताप का सविस्तृत चित्रण हुआ है ।

वीरगाथाएँ प्रायः वीर गीतों के रूप में ही लोक मानस में स्वीकृत हुई हैं । ये गीत जुझारू वीरों, सत्पुरुषों और सतियों की कीर्ति को अमर करने वाले हैं । चारण कवियों ने अपने काव्य नायकों के सत्कार्यों एवं बलिदानों का वर्णन करते समय उन्हें कीर्ति का कारण बनाने वाले तथा स्वर्ग लोक तक में यश फैलाने वाले पात्रों के रूप में चित्रित किया है ।[2] वीरगाथाओं में यश एवं प्रताप का यह वर्णन कई रूपों में पाया जाता है । कहीं वीरों की जीत का चित्र है तो कहीं उनके पराक्रम की झाँकियाँ हैं, कहीं उनकी दानवीरता है तो कहीं पर उनके शरणागति भाव का वर्णन है । इस प्रकार प्रताप - यशगान की इस परम्परा में वीर जीवन की उपलब्धियों का अनेक कोणों से चित्रण किया गया है । चन्द कवि पृथ्वीराज की विजयों का जय-जयकार करते हुए लिखता है –

'कहि जित्यो चहुआन, गरुअ गोरी दल भज्यो ।
कहि जित्यो चहुआन ईस होसह धर रज्यो ॥
कहि जित्यो चहुआन चन्द नागौर दुनगि ।
कहि जित्यो चहुआन सत्त सामंत अभंगि ॥

1- श्री ओमप्रकाश : प्राचीन हिन्दी काव्य : पृष्ठ 23-24
2- डा० नारायण सिंह भाटी : डिंगल गीत साहित्य : पृष्ठ - 124

जियौ सुसोम नन्दन कढ्यि खद्दिय सद्द सुरलोक हुअ ।
पामार पञ्ज सलष्यनह धरनि काज धर पंक सुअ ॥'[1]

जिस पध्दति से चन्द ने पृथ्वीराज की जय की ज्योति जलाई है उसी प्रकार वह अमर सिंह की सिध्दियों का भी प्रताप बखानता है और कहता है –

'अमर सिंघ सेवरा मंचमेई उप्पाइय ।
जेन भ्रंम वाचिग मंच क्षरिय कगर थाइय ॥
भोर घोर पष्पीह जोह दद्दुर हुर लाइय ।
हथ हथ समुदे न भेद सद्दोनिन आइय ॥
नाइक एक दखिन तनौ दखिन दर कूची दइय ।
चौरादिठ देवि परसाद करि मंच भेद अमरे ठइय ॥'[2]

चन्द बरदाई ने जिस चौहान नरेश के यशगान के लिए 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की थी, उसके अनगिनत सामन्त एवं सेनापति थे । इन सबका पृथक्-पृथक यशगान रासो के काव्य कलेवर में सुलभ है । प्रताप एवं यशगान की परम्परा में कवि ने भोलाराय भीम देव के बल-विक्रम का भी चित्र खींचा है :-

'वत्तोला सुक्कार चैत पुषसित द्रुति पारिय ।
भीरा राय भिनंग सेरि शिवपुर पज्जारिय ॥
आरज साई सलष्य संभरि संभारिय ।
चाहुआन सामंत मंत कैमास पुकारिय ॥
धर जान पधारन पट्टना बोलि बंक दुवार दिब ।
के वार कव्य नछत तनो पगे राज निसान नव ॥'[3]

सच बात यह है कि भक्ति रस का साहित्य (वन्दना मूलक) तो सर्वत्र सुलभ है लेकिन राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है उसके जोड़ का साहित्य अन्यत्र नहीं पाया जाता और उसका कारण है । राजस्थानी कवियों ने कठिन

1- पृथ्वीराज रासो : समय 13 : छन्द संख्या - 153
2- पृथ्वीराज रासो : भाग 2 : समय 12 : छन्द संख्या - 91
3- वही : छन्द संख्या - 31

सभ्य के बीच में रह कर युद्ध के नगाड़ों के बीच अपनी कविताएं बनाई थीं । प्रकृति का ताण्डव रूप उनके सामने था । क्या आज कोई अपनी भावुकता के बल पर फिर वही शब्द निर्माण कर सकता है ।[1] यह शक्ति एवं सामर्थ्य चारण कवियों में ही थी । चन्द ने पृथ्वीराज की युद्ध कुशलता का जो चित्र अंकित किया है, उसका रेखांकन कल्पना की भीति पर कदापि सम्भव नहीं, वह चित्र चन्द ही खींच सकते थे जिन्होंने स्वयं समरांगण की हाय-तोबा को देखा था -

'धरनि धीर खलभलत रेन चल मलति पवन करि ।
सीसै-सीस पर राति अर्द्ध नहीं सक्कत गवन करि ॥
भैन छिंद उधरंत सुभट सुम्मति जनु विद्दुव ।
गजन ढाल कढ़ुरन्ति भार रुधिर तक मध भुव ॥
दिधांत छिछुरि छौछि छुअ रुद्ध दान वग्गर वद्धिय ।
वर दिन्द पियन वड्वानलवि प्रसत जानि समुद्द वद्धिव ॥'[2]

इसी क्रम में चन्द बरदाई ने 'कुलवा' सामन्त का भी यशगान किया है एवं उसके बल, पौरुष तथा प्रताप की व्यंजना दी है -

'जीति लियो जयपाति रनह, वर चतुरंगी मोरि ।
पक्खर लक्ख सलक्ख हुअ, गोरी दल ढंढोरि ॥'[3]

यश एवं प्रताप वर्णन के विचार से पृथ्वीराज रासो बहुत ही व्यापक ग्रन्थ है । इसमें पृथ्वीराज का प्रताप,[4] पृथ्वीराज की दयालुता एवं वीरता,[5] कैमास की प्रशंसा[6] आदि के व्याज से प्रताप वर्णन एवं यशगान के असंख्य उदाहरण दिखाई देते हैं । यहाँ अन्य प्रकार की प्रचलित पद्धतियों पर विचार करने की यदि अनिवार्यता न होती तो इस पर अधिक प्रकाश डाला जा सकता था, जो यहाँ सम्भव नहीं है ।

1- रवीन्द्रनाथ ठाकुर का वक्तव्य : राजस्थान का पिंगल साहित्य : पृष्ठ - 8
2- पृथ्वीराज रासो : भाग-2 : समय-13 : छन्द संख्या - 142
3- वही : छन्द संख्या - 150
4- पृथ्वीराज रासो : भाग-4 : समय - 55 : छन्द संख्या - 1
5- वही : भाग - 2 : समय - 28 : छन्द संख्या - 158
6- वही : समय - 57 : छन्द संख्या - 97

जैसा कि बताया जा चुका है, चारण कवियों की आदिकालीन रचनाओं के न मिलने और प्रामाणिक पाठ के अभाव में यद्यपि विद्वानों ने अनुमान के आधार पर बड़े लम्बे - लम्बे वक्तव्य दे डाले हैं पर विभिन्न ग्रन्थालयों के द्वार खटखटाने तथा पुरानी पोथियों को उलटने से शोधार्थियों को अन्तत: अपेक्षाकृत निराश ही होना पड़ता है । यही सत्य मेरे साथ भी घटित है । यशगाथा के रूप में जो लिखी गईं और गाथाओं में प्रताप वर्णन की भरमार तो रही होगी, पर कैसे उन्हें प्रमाणित किया जाय ? अत: दुलभ सामग्री के आधार पर ही इस प्रवृत्ति का निरूपण करना पड़ रहा है । इस दिशा में आल्ह खण्ड के वर्तमान पाठ में भी प्रशस्ति का स्वर खूब पाया जाता है । 'बनारसी' क्षत्रियों की लड़ाकू वृत्ति का वर्णन करते हुए जगनिक लिखते हैं --

'बड़े लड़ैया बनरस वाले, तहँ पर बीत रहा घमसान ।
मुण्डन के तहँ ढेर लगिगे, औ लोथिन पर लोथ दिखाव ।
करिया भागि गया माड़ौ को, मारौं मिली नौलखा हार ।'[1]

--(आल्ह खण्ड

आल्ह खण्ड में अनेक बार वीर - वीरों का यश गाकर उन्हें समरांगण में अपनी तलवार का पानी दिखाने के लिए ललकारते दिखाई पड़ते हैं । इस प्रकार के यश गान की प्रवृत्ति देखी जाती है जिसमें घोड़े - हाथियों की भी प्रशंसा की गयी है । नीचे कुछ पंक्तियाँ साक्ष्य के रूप में दी जा रही हैं --

'मुर्चन - मुर्चन नचै बेंदुल, उदल कहैं पुकारि-पुकारि ।
नौकर चाकर तुम नाहीं हौ, तुम सब भइया लगौ हमार ।
पांव पिछाड़ी को न धरियो, यारो रखियो धर्म उमार ।
सनमुख लड़ि के जो मरि जैहौ, ह्वै हैं जुगन-जुगन लौ नाम ।'[2]

-- (आल्ह खण्ड'

यश एवं प्रताप के वर्णन में विद्यापति ने भी अपनी कुशलता का प्रदर्शन किया है ।' अपने आश्रयदाता की दानशीलता के माध्यम से प्रताप प्रदर्शित करना ही उनका लक्ष्य था --

---

1- डॉ. गणेशदत्त द्विवेदी : हिन्दी कवि और काव्य : भाग - 1 : पृष्ठ - 61
2- वही : पृष्ठ - 84

'दान गरुअ गएनेस जेन्ने जायक जन रज्जिय ।
मान गरुअ गएनेस जेन्हे रिउँ वद्दिम भज्जिय ॥
सत्ते गरुअ गएनेसे जेन्हे तुलिआ आखण्डल ।
कित्ति गरुअ गएनेस जेन्हे धवलिअ महिमण्डल ॥
लावन्ने गरुअ गएनेस पुनु देखि समासर पंचसर ।
भोगीसलन अउपासियजग गरुअ राय गएनेस वर ॥'[1]

यदि विद्यापति ने अपने आश्रयदाता के पुरुषोचित शौर्य एवं सदाचार की महिमा गाते हुए सज्जन पुरुषों का एक ऐतिहासिक क्रम स्मरण करके भी यशवर्णन के कर्तव्य का निर्वाह किया है –

'पुरिस कहानी कहो जस पत्थावे पुण्णु ।
हुअउ दधीअन दुभक्खण देवहा जाइ दुपुन्न ॥
पुरिस हुअउँ बलिराए जासु कर कहु पसारिज ।
पुरिस हुअउँ रघुतनअ जेनबले रावण मारिज ॥
पुरिस भगीरथ हुअउँ जेन निज कुल उद्धारिउँ ।
परशुराम अरु पुरिस जेन खत्तिय खउ करिअउँ ॥
अरु पुरिस पसंसओ राय कित्ति सिंह गएनेस हुअ ।
जे सत्तु समर सम्मद्धि कहु बप्प वैर उद्धरिय धुन ॥'[2]

आज सामन्तीय काव्य धारा के इन आदिकालीन ग्रन्थों के दर्शन भले न होते हों पर अपने आश्रयदाताओं के कीर्ति-कथन में इन चारण भाटों ने सैकड़ों नहीं बल्कि हजारों ग्रन्थों की रचना की जिनमें बहुत से तो कालकवलित हो चुके हैं और बहुत से विद्यमान हैं । डिंगल में फुटकर गीत, दूहे, दोहा आदि तो इतनी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं कि उनकी संख्या का अनुमान लगाना कठिन है ।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामन्तीय काव्य में आश्रयदाताओं, सामन्तों के साथ-साथ घोड़े-हाथियों की भी बहादुरी के, यश एवं प्रताप के वर्णन पाए जाते हैं ।

1- सम्पादक - बाबू राम सक्सेना : कीर्तिलता : प्रथम पल्लव, : पृष्ठ - 12
2- वही : पृष्ठ - 12
3- राजस्थानी साहित्य की रूप रेखा : पृष्ठ - 23

वीरता मूलक प्रशस्ति :-

सामन्तकालीन राजपूताने का इतिहास वीर-बांकुरों के रक्त से रंजित है। तत्कालीन राजस्थान की माटी के एक-एक कण में वीरों के रक्त के अणु-परमाणु बहुत गहरे तक बिधे हुए हैं। इस काल की रचनाओं के रचने वाले श्रेष्ठ कवि योद्धा भी होते थे। युद्ध भूमि में जाकर वीरों को उत्साहित करना, वंश-गौरव और स्वदेश की आन-बान का बारम्बार बोध कराना तथा इसके अतिरिक्त युद्ध-भूमि में स्वयं उपस्थित होकर एक योद्धा के रूप में भाग लेना इनका कार्य था। इसलिए इनके द्वारा प्रस्तुत युद्ध-दृश्य कोरी कल्पना मात्र नहीं है।[1] उसमें राजस्थानी शौर्य के फड़कते हुए जीवन्त क्षण साकार होकर भारतीय वीर जीवन की अमर कविता बन गए हैं। 'इसके कहने की आवश्यकता नहीं कि ये चारण-भाट कवि जिन राजा-महाराजाओं की प्रशंसा में ग्रन्थ लिखते थे, प्रायः उनके समसामयिक होते थे और बहुधा आँखों देखी घटनाओं का वर्णन करते थे। चन्द आदि कुछ कवि तो ऐसे भी हुए, जो युद्ध, आखेट आदि में अपने चरित नायकों के साथ रहते थे और स्वयं इन कार्यों में भाग लेते थे।[2] सच बात तो यह है कि डिंगल भाषा में रचित चारणों के वीर अथवा सामन्तीय काव्य का इतिहास 500 वर्ष की तपती वीरता का ही दस्तावेज है। हमारी 'इन पाँच सदियों में सामन्त वस्तुतः निर्भय वीर होते थे। उनकी देश विजयों के बारे में कवि अतिशयोक्ति भले ही कर सकता है लेकिन शरीर पर तीर और तलवारों के घावों के चिह्नों के बारे में अतिरंजना की जरूरत नहीं थी। ऐसे समाज के लिए वीर रस की कविता बिल्कुल स्वाभाविक है।[3] और यह कविता ही हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुसार प्रशस्ति की सच्ची तस्वीर खींचती है। चन्द के रासो में इस प्रकार की वीरतामूलक प्रशस्ति के उदाहरण भरे पड़े हैं। भीमदेव की वीरता का यशगान करते हुए चन्द लिखता है -

'अनहलपुर आसीन राजभोरा भीमदे ।
देसां गुज्जर खंड देस धरिया से वन्दे ॥
सेन सबल चतुरंग वीर वीरा रस ढंग ।
अति उतंग अनभंग मिलन पुच्छे अरु जंग ॥

1- पुरुषोत्तम प्रसाद आसोपा : आदिकाल की भूमिका : पृष्ठ - 162
2- डा० मो०ला० मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृष्ठ - 23
3- राहुल सांकृत्यायन : हिन्दी काव्य धारा : पृष्ठ - 29

कलिकाल विक्ति भिक्तो क्षत्रिय पलति प्रीति वत युग कान ।
भौरा नरिंद भीमंग बल उभय दीन तक्के सरन ॥'[1]

पृथ्वीराज रासो अनेक वीर सामन्तों के वीर चरित्रों का एलबम सो है । जिस चित्र को देखिए वीरता की दीप्ति झलकती हुई दिखाई पड़ेगी । सलख की वीरता का बखान करने में भी चन्द ने प्रशस्ति का आदर्श प्रस्तुत किया है –

'अबू वे है गैरमार समर सम्पन तेज ।
समर उभे समरंग करि समर हुवुब्बे देज ।
पेम करन पंगार भर धर उद्धरन नरिंद ।
भीम जेन परतापपति वर पवार धरचन्द ।।
वर पधार्ध्र चंद नरन स्मह नारायइन ।
आबू वै द्रुग भाग अद्ध वध्यो जिन पाइन ॥
ता उप्पर चालुक वीर बंधी तिम सोमह ।
भरन करन दातार बन्ध सुभह वीर भीमह ॥'[2]

इस वीरता मूलक प्रशस्ति की रचना के विचार से चन्द द्वारा लिखित आबू पर चढ़ाई की तैयारी एवं भीम देव की सेना का प्रयाण,[3] सरदारों की वीरता का वर्णन,[4] चामुंड राय के युद्ध का वर्णन,[5] वैरागी वीरों का युद्धोन्माद[6] आदि अनेक स्थल हैं जहाँ वीर भावना से पूरित प्रशस्ति का रेला-पेल दर्शन होता है । उल्लेखनीय है कि कवि चन्द बरदाई ने 'जगनद' की वीरता का भी मुक्त कण्ठ से जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है जिसके उद्धरण का लोभ संवृत्त नहीं किया जा सकता –

'रुपि जगनद रन माहि, हय आवे वर हत्थिय ।
दियो चन्द पुरसाद, दियो कयमास समत्थिय ॥ .

पृथ्वीराज रासो : भाग 2 : समय 12 : छन्द संख्या 7

1- पृथ्वीराज रासो : भाग 2 : समय 12 : छन्द संख्या 7
2- वही : छन्द संख्या 30
3- वही : छन्द संख्या 77, 78, 79, तथा 83 व 84
4- वही : समय 13 : छन्द संख्या - 154
5- वही : समय 18 : छन्द संख्या - 305
6- वही : समय 28 : छन्द संख्या 83

एम्मियो सैन हजार रुंड नाच्यो बिन सोसह ।
मानि जौर प्रथिराज पोल मारयो करि रोउह ॥
कीनो कहाव रन मांहि बुद्धि लोह लहरि खंड मारिहरि ।
जंपी सुचंद वानी बरनि भाट- भाट कीनो कहरि ॥'[1]

वीरता का एक प्रमुख आयाम दानशीलता भी है । चन्द की रचनाओं में वीरता मूलक प्रशस्ति का दान वीर रूप भी उच्च स्तरीय अभिरुचि के रूप में पाया जाता है । कवि ने अपने आश्रयदाता की दानशीलता के कारण जो महिमा गाई है, वह प्रशस्ति भाव का उत्तम उदाहरण है –

'पय लग्गत चहुवान मौज ग्वालेर सुदिन्नी ।
तिन धम्मदत्त दट्टो दहर पुब्बा किन्नी ॥
लोहाना आजान (बाहु) नाम थप्पे बहु अप्पे ।
सहस पंच दिय ग्राम बेत कवि चंद सुजप्पे ॥
लिह थरिद ममि. यह अप्पिये, दै पद्म सोरह धरिय ।
रख्यो सुबल दिन तीनसै, पग मग्ग अप्पो वरिय ॥'[2]

कवि ने अपने चरित नायक पृथ्वीराज चौहान की वीरता का वर्णन करते हुए उसके रण-प्रयाण एवं उसकी दान वीरता का समन्वित चित्र भी प्रस्तुत किया है –

'स्नयनं स्नब्बानं, दिय सज्जानं वज्जि-हसं नीसानं ।
सब्बे सिलहानं, निजनेप थानं, पथ्थीरपानं, अरमानं ॥
निज देस तन्थानं दीन सुधानं देव समानं हंसानं ।
मनि दिप्पानं दंति दानं अलि-भ्भानं जैपानं ॥'[3]

वीरता की यह रसधारा शास्त्र की मान्यताओं की भी निभाती हुई प्रवहमान है । मात्र युद्ध वीरता ही नहीं दयावीरता, दान वीरता एवं धर्मविषयक वीरतामय प्रशस्ति की व्यंजनाएं चन्द के छन्द विधान में व्यापक रूप से पाई जाती है ।

1- पृथ्वीराज रासो : भाग 2 : महोबा समय : छन्द संख्या -774
2- वही : भाग 1 : समय 4 : छन्द संख्या - 8
3- पृथ्वीराज रासो : भाग - 1 : समय 9 : छन्द संख्या - १०६

एक और उदाहरण देकर हम चन्द की वीरता मूलक प्रशस्ति की बात समाप्त करते हैं –

'एक राव संभरिय, द्वितिय जोगिनिपुर भूपति ।
तेज मौज अजमेर, उअर उद्धारति मूरति ॥
बान माथ, क्य मथ, मथ्थमह मद्दि तन मोचन ।
छिति छितान धन ग्रथ, ग्रामवर छिय रति रोचन ॥
क्षत्रि देव देव मण्डल सभा, इक्कल्ल अष्ट अर्धंचलिय ।
सुरतान बंधि षुरसान रति, मंत अखंड हृदंइ लिय ॥'[1]

यह तो पहले ही निवेदन किया जा चुका है कि इस काल के समुपलब्ध द्वितीय रासो 'बीसल देव रासो' में वीरता का प्रायः अभाव है । नाल्ह कवि रचित 'विजयपाल रासो' में विद्वानों के अनुसार विजयगढ़ के यदुवंशी शासक विजयपाल की कथा वर्णित है । यह रचना पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं है । इसके केवल 42 छन्द ही प्राप्त हैं ।[2] दुर्भाग्यवश तमाम दौड़-धूप करने के बावजूद मुझे इन छन्दों को दृष्टि पथ में लाने का सुअवसर ही नहीं मिल पाया । (वीरात्मक प्रशस्ति की वर्णना की दृष्टि से प्रबन्ध रचनाकारों में भिन्न धारा के कवि विद्यापति की दो रचनाएँ उल्लेखनीय हैं – 'कीर्तिलता' एवं 'कीर्तिपताका') 'चारणों की प्रबन्ध-बद्ध रचना कहीं भी प्राप्य नहीं है । फुटकल रूप से स्याद छन्द अवश्य मिलते हैं, जिनमें पिंगल भाषा की रचनाएं भाटों की हैं, डिंगल की रचनाएं चारणों की हैं ।'[3] वीरात्मक प्रशस्ति के वर्णन-विचार से, उक्त दोनों धाराओं से भिन्न कवि विद्यापति की रचनाएं अवश्य सुलभ हैं । विद्यापति भी दरबारी कवि थे, उनकी 'कीर्तिलता' एवं 'कीर्तिपताका' दरबारी रचनाएं हैं । इनमें वीरता मूलक प्रशस्ति का स्वर काफी प्रबलतम सुनाई पड़ता है । युद्धरत वीरों की वीरता और उनकी रणकुशलता का चित्रांकन करते हुए कवि विद्यापति कहते हैं –

1- पृथ्वीराज रासो : भाग - 1 : समय 46 : छन्द संख्या - 111
2- डा० माताप्रसाद गुप्त : रासो साहित्य विमर्श : पृष्ठ - 17
3- श्री नाहटा का वक्तव्य : दिनांक 21/1/79 (व्यक्तिगत साक्षात्कार) ।

'उमाता जोवा उट्ठे वोवा,

ओथा - ओथी जुधन्ता ।

मेलान्ता पंभा - नाह दंभा,

अप्पा - अप्पो जुम्भन्ता ॥

धावन्ता सव्वा छिण्णी कंठा,

मत्थापिट्ठो पेरन्ता ।

पं रुग्गा भग्गा आए भग्गा,

उद्धा - उद्धा हेरन्ता ॥'[1]

— (कीर्तिलता

डा० सिंह ने इन पंक्तियों को उद्धृत करते हुए यह स्वीकार किया है कि विद्यापति एक जागरूक कवि थे । उन्होंने न केवल भारतीय वस्तु-वर्णन शैली को पूरी तरह हृदयंगम कर लिया था बल्कि तुर्कों की विशिष्ट जीवन प्रणाली से भी परिचित थे । - - - - वे मध्यकालीन चारण शैली वाले काव्यों से पूर्णतः परिचित थे । - - - - प्रशस्ति काव्यों का टंकार भरी भाषा पर भी असामान्य अधिकार रखते थे । इन्हीं कारणों से 'कीर्तिलता' मध्यकालीन संश्लिष्ट जीवन की नव-दर्पण बन गई है ।[2] तत्कालीन साहित्य की वीरगाथात्मक प्रवृत्ति के अनुसार विद्यापति ने भी वीरता के निदर्शक युद्ध का अत्यन्त सजीव एवं चित्ताकर्षक वर्णन किया है जिसमें ढोल एवं ढंके का घनघोर घोष, रणभेरी का कोलाहल, शंखनाद आदि के साथ घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़, तलवारों की झनकार, शृंगालों की हू-हू ध्वनि, भूत-प्रेत एवं वैतालों के रुधिर-पान, नृत्य-गान का दृश्य अंकित किया है । कवि के इस युद्ध-क्षेत्र के चित्र में उसके आश्रयदाता राजा शिवसिंह की वीरता, शूरता, पराक्रम, कौशल आदि को देखा जा सकता है —

'दूर दुग्गम दमसि भंजिओ गाढ़ गढ़ गूढ़िय गंजिओ ।

x x x x x x x x

तासि देवा तुला धरा पर ताम गहिओ रे ।'[3]

1- डा० शिवप्रसाद सिंह : कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा : पृष्ठ - 222

2- वही : पृष्ठ - 227

3- डा० कालिकाप्रसाद सक्सेना : हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि : पृ०- 53-54

इसी क्रम में राठौर राज प्रिथीराज री कही 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' की वीरतापूर्ण पंक्तियों का स्मरण होता है। कवि ने कृष्ण एवं बलराम के रौद्र रूप की झाँकी वीरता की व्यंजना के प्रकाश में दिखाई है। कवि ने युद्ध की क्रियात्मकता के अत्यन्त सजीव तथा ओजमय चित्र अंकित किए हैं। युद्ध स्थल में किस प्रकार दो सेनाओं का आमना - सामना होता है, इसका अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन करते हुए कवि कहता है –

'ऊठगो हो मेहो को अखवते,
देजलो हसी दलां हुंद ।
वागा नेतरियां पाखरए,
मारगुए फिरिया मुंद ॥'[1]

इसी प्रकार प्रचण्ड रण की अनुभूति जागृत करने के लिए कवि ने बड़े कौशल से शब्दों का प्रयोग किया है –

'अलकंदिया कुन्त किरण कलि ऊमठ ।
बरजति विसिख विवाजित वाउ ।
धड़ि धड़ि धमंकियां धार बल ।
सिहरि - सिहरि समर्भे सिलाउ ॥'[2]

आल्ह खण्ड का जो पाठ उपलब्ध है, उसी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसमें वीरता की त्रिवेणी बहती है। पर इसे आज हम उसी मूल भाषा में पाठकों को [illegible] नहीं कर पा रहे हैं, यह खेद की बात जरूर है फिर भी यह तो मानने में कोई संकोच नहीं कि आल्ह खण्ड में वीरता मूलक प्रशस्ति की अनुभूति है वह नितान्त स्पष्ट और भास्वर है –

'यह सुनि [illegible] बोलन लागे, लाखनि सुनो हमारी बात ।
[illegible] रानिन के इकलौता, और [illegible] कै हर्दें सिंगार ।
आरू लवरिया हो जयचन्द को, नाहक दै हो प्रान गवाँइ ।

1- वेलि क्रिसन रुक्मिणी री : छन्द संख्या - 116
2- संपादक - डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित : वेलि क्रिसन रुक्मिणी री : पृ०-85

कहो हमारी लाखनि मानौ, तुम समुहे से जाव बराय ।
पूँछो बीछो रूप लाखनि ने, समुहे भलो दई अड़ाय ॥'[1]

इस प्रकार आल्ह खण्ड में वीरों की ललकार भरी वाणी में आमने -सामने खड़े होकर किए गए सम्वादों की एक लम्बी परम्परा है, जिसमें क्षात्र धर्म के दर्प से दीपित होकर वीरता की भावना से भूषित 'प्रशस्ति काव्य' की प्रतिष्ठा पाई जाती है । यह सत्य है कि इनका वर्णन मात्र प्रशस्ति नहीं, जीवन का वह यथार्थ वर्णन है जिसे चारण कवि देखता और भोगता था । यही स्थिति इन लड़ाकू राजपूत जाति की दंगों - झगड़ों आदि रूप हुए थी ।

<u>रूपात्मक प्रशस्ति :-</u>

काव्य पद्धति में सामान्यतया जिसे 'रूप - वर्णन' कहा गया है, शिखनख की पद्धति पर उसे प्रस्तुत करना ही रूपात्मक प्रशस्ति है । कवि जब अपने आश्रयदाता राजा - रानियों के सौन्दर्य का गान सहेतुक रूप में करता है तो वही प्रशस्ति का स्वरूप धारण कर लेता है । यह बताने की आवश्यकता नहीं समझी जाती कि चारण और उनके सामन्तीय काव्य में वीर रस के बाद दूसरा प्रमुख रस शृंगार है । ऐसी स्थिति में शृंगारावलम्बित होने के कारण इन काव्यों में रूपात्मक प्रशस्ति की अनुभूति भावनाएँ होनी भी चाहिए । 'बीसल देव रासो' में कवि ने राजमती की सुन्दरता की अनिंद्य झाँकी प्रस्तुत की है, उसे रूपात्मक प्रशस्ति के अन्तर्गत माना जा सकता है -

'घाट बरणोदक राज कुमारि ।
पहिरि पटोलिय कुनड़ी सार ॥
कानि कुण्डल सिणगाराइ ।
रोवराई रावड़ी तिलकनि लाड़ि ॥
रूप देखि राजा हरखै ।
त्रिभुवन मोहियउ जाति पमारि ॥'[2]

1- हिन्दी के कवि और काव्य : पृष्ठ - 67
2- डा0 उदयनारायण तिवारी : वीर काव्य : पृ0-146 : छन्द सं0 - 23

राजस्थानी चुनरी से विभूषित कर्णाभरण अलंकृता, तिलक मण्डित ललाट प्रदेश वाली रानी को देख राजा आनन्दित हुआ और त्रिलोक मोहित हो उठा । यह तो हुई नारी के रूप की प्रशंसा पर आधारित प्रशस्ति भावना । इसी प्रकार वीर काव्यों में पुरुष सौन्दर्य का भी प्रशस्तिपूर्ण कथन हुआ है । पृथ्वीराज रासो में कवि चन्द ने वीरों के रूप का निरूपण किया है –

'आनंद चंद दरसंत वंद । सोभा सुमंत व प्रांग दंद ॥
तन तेज तरनि ज्यों घनह ओप । प्रकटी किरिनिधरि अवनिकोप ॥
चन्दन सुलेप वस्तुर चित्र । नभ कमल प्रकटि जनु किरन मित्र ॥
जनु अगनित नग छवि तन विसाल । रसनाकि बैठि जनु भ्रमर जाल ॥'[1]

चन्द के छन्दों में जहाँ वीरता का दर्प दीपित है वहाँ रूप एवं कान्ति की कलित कल्पनाएँ भी झिल-मिल-झिलमिल करती हैं । उन्होंने यदि पुरुष रूप-वर्णन में कौशल प्राप्त किया था तो नारी की रूपात्मक झाँकी उद्घाटित करने में वे अपने छन्द एवं अपनी परम्परा के अद्वितीय कवि रहे । इच्छिनी की सुषमा को रेखांकित करते हुए कवि चन्द लिखते हैं –

'द्रव्य धार उदार दान कढ़ै सुष नध्धै ।
केवला आयुध निदान जितिपच्छ नध्धै ।
ऊँचा तुंग तुरंग चंग ऊंचारन कढ्ढै ।
पावारी कर सुरेह पछिपानी कढ्ढै ॥
श्वेतां नराग खग लिष्षं पहनदे पडे दरा ।
दै जैन ध्रम उगाइयां तेनक लगो करां ॥'[2]

पृथ्वीराज रासो में वर्णित वृत्तान्त के अन्तर्गत 'सेनापति' कैमास किसी क्षत्री कन्या की सुन्दरता पर रीझ गए हैं । कवि चन्द वरदाई ने उसके रूप का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह अवलोकनीय है –

1- पृथ्वीराज रासो : भाग 1 : समय 6 : छन्द संख्या – 35 व 36
2- पृथ्वीराज रासो : भाग 2 : समय 12 : छन्द संख्या – 11

'कुंदिल केस वय स्याम गौर गुन वाम काम-गति ।
चौर धनी उन्नित जानि रवि बिंब वोय गति ।
चष चंचल उदि्दय नरिंद्दं करी मनौ ब्रह्म अप्पकर ।
ता समांन कोइ आन नाहि असमान थान धर ।
कवि चन्द कहै वावनं करि पदम गन्धु मुख चन्द सरि ।
कुवत तुरंग गुमनह करन मानौ मार अवंगि धरि ॥'[1]

ठीक इसी प्रकार की कवित्तमयी झाँकी कवि ने पद्मावती के रूप वर्णन प्रसंग में भी प्रस्तुत की है –

'कुटि्टल केस सुदेस पोह परिचियत पिक सद ।
कमल गन्ध वय सन्धि हंस गति चलति मन्द-मन्द ।
सेत वस्त्र सोहें सरीर नख स्वाति बुन्द जस ।
भंवर भवंहि भुलहिं सुभाव मकरन्द वास-रस ॥'[2]

इसी क्रम में संयोगिता की शोभा का वर्णन करने वाले प्रसंग का भी उल्लेख किया जा सकता है ।[3]

चन्द पृथ्वीराज के राजा, मन्त्री, मित्र, सलाहकार और दरबारी कवि भी थे । पृथ्वीराज रासो के चरितनायक के लिहाज से उनके सौन्दर्य का निरूपण स्वाभाविक प्रशस्ति का बहुत ही समीचीन स्थल माना जाएगा । चन्द की एतद् विषयक छटा दृष्टव्य है –

'कुसुम पट्ट सिर पाग, कुडम रस गन्ध भवंर सम ।
श्रवन सार दोउ दाष द्रव्य बहु मीरि - जोरि जम ॥
सुरत रत्त अंतरह रत्त तन विरत मोहि मानि ।
सुरत हथ्थ आतुरत सुरत नीसान सुक्कि सुनि ॥'[4]

1- पृथ्वीराज रासो : भाग 2 : समय 12 : छन्द संख्या - 248
2- पृथ्वीराज रासो, : पद्मावती समय ।
3- वही : भाग - 2 : समय 61 : छन्द संख्या 2514, 15 तथा 16
4- पृथ्वीराज रासो : समय 14 : छन्द संख्या - 285

<u>सम्पदा एवं वैभव वर्णन :-</u>

दरबारी साहित्य होने के कारण चारणों एवं अन्य सामन्तीय कवियों की रचनाओं में विषय के रूप में जहाँ तत्कालीन जीवन की अनेकों झाँकियाँ उद्घाटित हुई है वहीं अनिवार्यतः एवं स्वाभाविक रूप से राजाओं के सुख- वैभव एवं सम्पदा का ऐश्वर्यपूर्ण आनन्द भोग एवं विलासी वातावरण की संरचना भी सामन्तीय काव्य में खूब पाई जाती है । अपने - अपने आश्रयदाताओं की सम्पदा एवं उनके वैभव की यशगाथा गाने में इन कवियों ने अतिश्योक्तियों का भी सहारा लिया है । वैभव बखान की यह प्रवृत्ति केवल बड़े काव्यों में ही नहीं पाई जाती है, अपितु इसका निर्वाह लघुकाय काव्यों में, मुक्तकों एवं गीतों में भी हुआ है । चन्द कुमार के आने पर उसके स्वागत में नगरी की शोभा किस प्रकार दिखाई पड़ती है, इस कवि इसका चित्र खींचते हुए लिखते हैं -

'घर - घर नगर बधावण तोरण बांध्या बार ।
परणीजलायो पदमणी आयो चन्द कुवार ॥'[1]

यद्यपि 'चन्द कुँवर री वार्ता' प्रेम काव्य है, फिर भी इसके वैभव बखान के अतिरिक्त वन्दना मूलक एवं स्वान्द प्रशस्ति का भाव पाया जाता है,जिसका उल्लेख किया जा चुका है । इस प्रकार की एक 'बात' जोशी कवि द्वारा लिखी गई 'विक्रमादित्य राजा री बात' है । इसमें वार्ताकार कवि जोशी ने विक्रमादित्य की परम्परित कथा को प्रस्तुत करते हुए उसके अन्तर्गत दैत्य - दमन विजय, सिद्ध दण्ड राजा, कामहरण कलह, रतन मंजरी पारणो, स्त्री - चरित्र, काम प्रकरण, सिंगार नगरी और पंचमोद प्रसंग का भी वर्णन किया गया है । कवि राजा विक्रम की सम्पदा का वर्णन करते हुए लिखता है.-

'कनक शिखर राजतेहां कलश मंजरि निमाय ।
धपामहो बवहरववउ, परणी विक्रम राय ॥'[2]

1- चन्द कुँवर री वार्ता / चन्द संख्या - 11
2- विक्रमादित्य राजा री बात : सम्मेलन प्रति ।

सम्पदा एवं वैभव प्रधान प्रशस्ति की सबसे गहरी गूंज विद्यापति की 'कीर्तिलता' में सुनाई पड़ती है । कवि अपने आश्रयदाता की कीर्ति का गान करते हुए उसके वैभव एवं उसकी सम्पदा का निरूपण करते हुए लिखता है -

'जन्हि करो माथे सूर्यरथ बहल पर्यन्त सात पौला करो अट्टाल सो टाप बाज । प्रमद वन पुष्प वाटिका कृत्तिम नदी क्रीडा शैला, धारागृह यन्त्रव्यंजन, श्रृंगार संकेत माधवी मंडप विभ्रम चौरा, चित्रशाली खट्वा, हिंडोल कुसुम शय्या, प्रदीप माणिक्य चन्द्र कान्त शिला चतुस्सम पल्लव करी परमार्थ पुच्छिहि सिखा नए वाप अभ्यन्तर करी वार्ता के जान । स्वर्णध्वज चूरदपोल, मकुन्त किसलिमत, सिंदुर पदिक परिहृएए अमानि अगुणी अनेरिजिअ लोग एब्ब महल की मम्म जानिअ ।'[1]

रासोकार चन्द बरदाई ने भी शशिव्रता को ब्याहने के प्रयाण के समय की जो झाँकी प्रस्तुत की है उसमें वैभव एवं सम्पदा का पूरा रोब-रूतबा सामने आ गया है । वैभव वर्णन की पद्धति है जो नयी प्रशस्ति में यह स्थल विशेष विचारणीय है -

'दहति तीनि चौंडोल मध्य चौडोल बालम्य ।
चमरटोल श्रृंगार दास विंदिय दुपंच सय ।
सित्त पांच अस्वार पंति नच्चिय चावद्दिसि ।
अट्ठ लच्छ पैदल्ल सच्च आयो सुअंग करि ।।'[2]

कवि चन्द यद्यपि पृथ्वीराज का दरबारी था और जयचन्द तथा पृथ्वीराज में अनबन रहती थी फिर भी चन्द ने जयचन्द की कीर्ति एवं प्रताप का वर्णन करते हुए अपनी प्रशस्ति भाव धारा का विनियोग किया है । चन्द वरदाई जयचन्द के प्रताप का वर्णन करते हुए कहते हैं -

'कनवज्जह जैचन्द दंड दारुन दल दुत्तर ।
पच्छिम, दच्छिन पुब्ब दान मंडे दल उत्तर ।।
दिल्लिय चित्रकोट जोट अट्टे दल पंगं ।
रोव दंड अनमंड षग मंडन दल अंगं ।।

1- सम्पादक - डा० बाबूराम सक्सेना : कीर्तिलता : पृष्ठ - 52
2- पृथ्वीराज रासो : भाग 2 : समय 25 : छन्द संख्या 341

'बहु भूमि द्रव्य धर उग्र है इम तपै प्रहुठीर पहु ।
सुख इन्द्र चन्द्र छत्तीस दर मुकट बंधि विनमानहु ॥'[1]

चारण काव्य में राजा की सबसे बड़ी सम्पदा उसकी सामरिक साज-सज्जा ही मानी जाती थी । अतः इन कवियों ने अपनी कृतियों में अपने आश्रयदाता के वैभव का बखान करते हुए अस्त्र - शस्त्र, घोड़साल, सेना आदि का भी दिल खोल कर वर्णन किया है । कन्नौजगढ़ की रक्षा एवं उसके सैनिक प्रबन्ध की बड़ाई करते हुए चन्द कवि लिखता है –

'लष्ष छभार आवंत लष्ष दर - बाहर रष्षे ।
लष्षह गोलंदाज लष्ष इक नाल भरिष्षे ॥
हष्षि जानि सिलहानि गिरद रष्षे दरबारह ।
पारक लष्ष प्रचंड रुंड माने नर सारह ॥
लष सामंत हदल सेना दरे ब्वादस सूरज जोति कल ।
हथ तीनि तुरिय पष्षर रषित पवन पार सेराक भल ॥'[2]

इसी प्रकार रासो में शिकार, सामान, वन शोभा, वन जीवों आदि की सम्पदा एवं वैभव मूलक चित्रावली प्रस्तुत की गयी है ।[3]

सामन्तीय सम्पदा एवं वैभव की भरपूर झांकी कवि नाल्ह की वाणी में उस समय मुखरित होती है जब राजमती के विवाह में राजा दान - दहेज की व्यवस्था करते हैं । असीमित द्रव्य, सोने की चूंदी, मोती की माला, सवा लाख का तोड़ा, मांडल गढ़, कुंडाल आदि देश दायज में दिए जाते हैं । बीसलदेव रास लिखता है –

'देस मालवइ पुवरी उचाह ।
राजमती जाउ रच्यउ रे विवाह ।
चंदन बाद का मांडिवउ ।
सोना की चउरी, नव मोतियां की माल ।

1- पृथ्वीराज रासो : भाग 4 : समय 55 : छन्द संख्या 3
2- पृथ्वीराज रासो : भाग 4 : समय 61 : छन्द संख्या 452
3- वही : भाग - 5 : समय 62 : छन्द संख्या - 119

परिलइ फेरइ दोजइ दाइजउ ।
आलोउरसउं आरि माल ॥
× ×   × ×   × ×
दीन्हाकइ अरथं नइ सरब भंडार ।
दीन्हउ बह देश सब लखउ ।
सर सईं भरि सउं नागर चाल ॥'[1]

यश एवं महिमा गान :-

चारण एवं सामन्तीय काव्यों में आश्रयदाताओं की महिमा एवं उनके सार्व देशीय यशगान की ..ढ़ती भावना का निदर्शन प्रायः एक प्रवृत्ति के रूप में कम - अधिक मात्रा में सभी काव्यों में पाया जाता है । यह ध्यान देने का विषय है कि हिन्दी का समस्त वीरगाथा काव्य सामन्तयुगीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति के जीवन रस से अनुप्राणित है । आर्यावर्त की बध श्यामला वसुन्धरा पर सामन्तों के रतिविलास, राजकन्याओं के अपहरण और गृह कलह आदि की भंग - भंगिमाएं लेकर वीरगाथा काव्य के सृजन एवं पोषण का कार्य पूरा होता रहा ।[2] अतः आश्रित कवि अपने आश्रयदाताओं की बड़ाई एवं महिमा को सार्वदेशिक रूप से घोषित करने में ही अपनी प्रतिभा की पूरी पूंजी लगा दिया करते थे । फलतः सामन्तीय काव्य में यशगान के लम्बे - लम्बे वर्णन वाले एकाधिक स्थल देखे जाते हैं । अनावश्यक विस्तार से बचने के लिए यहाँ प्रशस्ति की इस धारा के एकाध उदाहरण देकर यह प्रसंग समाप्त कर दिया जाएगा । पृथ्वीराज के सभा मण्डप की प्रशंसा करते हुए कवि चन्द लिखते हैं --

'जयं छ धज्जि अग्गियं, सुधाम तेज तग्गयं ।
सजे दुमाल आसनं, अमोल रोहि वासनं ॥
सदीप दाम सोभयं, सुगन्ध गन्ध लोभयं ।
कपूर पूर अंभरं, मृगज्जवास अंगरं ॥

1- सम्पादक : डा० माताप्रसाद गुप्त : बीसलदेव रासो : छन्द संख्या 19-20
2- श्री पूलचन्द जैन : हिन्दी और उसके कलाकार : पृष्ठ - 1

सुरुज्जि सिंह आसनं, समोल रोहि वासनं ।
कनेक वत्र दर्ष्यं, सुरंग रंग मंर्ष्यं ॥'[1]

ऐसा नहीं है कि राजसी - ठाट-बाट की ही डींगें मारी गई हों, आश्रयदाता के शिकार आदि की भी प्रशंसा की अतिशयोक्तिपूर्ण झाँकी भी चारणों द्वारा लिखित काव्यों में पाई जाती है । चन्द वरदाई ने शिकार प्रसंग की महिमा एवं प्रशंसा का प्रतिपादन करते हुए जो शब्द विधान किया है वह अवलोकनीय है —

'पानी पंथह राइ आप पेस्या आखेटक ।
सत्त एक स्माल बराह हन्ते हुगात सक ।
अवर रुत्त पंच तम धत्त हन्ते करबानह ।
दो हुरंग अरि हुन दो हने चितानह ।
को गने सवर सावय अनंत हने पसु अरु पंषि जहं ।
उतंग गाइ चल आनधिति दित्त उच्छस अनुसारितहं ॥'[2]

न केवल चारणों द्वारा लिखित अपितु समस्त भारतीय ऐतिहासिक काव्यों में ऐतिहासिकता [illegible] और कथाओं की भाँति अनेक निर्जधरी और कल्पना निष्ठ घटनाओं का प्रयोग किया गया है और कथा को रोचक तथा गतिशील बनाने एवं उद्देश्यपूर्ण प्रभाव हेतु मोड़ देने के लिए इन काव्यों में भी उन सभी कथात्मक कौशल का उपयोग किया गया है जिनका व्यवहार इसी उद्देश्य से भारतीय निर्जधरी और पौराणिक कथाओं में प्राचीन काल से होता चला आ रहा है, इनमें सरसता और गति उत्पन्न करने के लिए सम्भावना, कवि कल्पना अथवा लोक विश्वास पर आधारित अनेक घटनाओं का उपयोग भी हुआ है जो निर्जधरी कथाओं में बार-बार प्रयुक्त होकर रूढ़ हो गयी है ।[3]

विद्यापति की 'कीर्तिलता' नामक रचना इसी प्रकार की कृति है । कवि ने अपने चरित नायक के यश या गान एवं महिमा का वर्णन इसी परम्परा का अनुधावन करते हुए किया है । इस कृति से यश वर्णन का एक उदाहरण यहाँ

1- पृथ्वीराज रासो : भाग 3 : समय 20 : छन्द संख्या 11, 12, 13
2- वही : भाग 4 : समय 58 : छन्द संख्या 52
3- ब्रजविलास श्रीवास्तव : पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियाँ : पृष्ठ - 18

प्रस्तुत किया जा रहा है -

'कइ'-कह कन्ता सच्चु भणन्ता,
किमि परि सेना सञ्चारिय ।
किमि तिरहुत्ती, होअइं पवित्ती,
अरु असलान किअकारिअ ।
चिन्ति सिव गुण राखो धरो,
पै जाइ सम्पाइ थान ।
बिनु बने बिनु धने बन्धे बिनु,
जे चालिअ सुरतान ।
गुरुअ कीर्तिसिंह कुमार कोसग्ग,
भाणिक असलान ।
कोलु लाजे जेहि के आये,
पातसाह राजे आहिके आस सुरतान ॥[1]

इस संक्षिप्त विवेचना के परिणामस्वरूप यह स्पष्ट है कि सामन्तीय काव्य का मूल स्वर ही प्रशस्ति है । जितनी भी रचनाएँ सामन्तों की छत्र - छाया में उनके जीवन को उपजीव्य मान कर रची गयी हैं, उनका ही यश, वैभव, शौर्य, युद्ध आदि का गान निरन्तर करती हैं । यदि इन कृतियों के रचयिता चारणों एवं भाटों की इस प्रशस्ति भावना को निकाल दिया जाए तो मूल्यांकन करने पर प्राप्त परिणामों से इन रचनाओं की साहित्य सम्पदा के विषय में बड़ी निराशा होगी ।

आदिकालीन जैन काव्यों में यदि प्रशस्ति का मूल स्वर अलौकिक है और उस अलौकिक प्रशस्ति में महावीर स्वामी जिनेश्वर, जैन मुनियों, श्रावकों आदि की वन्दना का प्रबल भाव पाया जाता है तो उसमें लोक-नरेशों की भी प्रशस्ति की भावना का नहीं । सिद्धों - नाथों में मात्र गुरु - वन्दना की ही प्रशस्ति विषयक विचारधारा की बहुलता है, किन्तु इस काल के चारण कवियों की रचनाओं में अनेक देवो -

---

1- सम्पादक - डा0 बाबूराम सक्सेना : कीर्तिलता : पल्लव 4 : पृष्ठ - 80

देवताओं की वन्दनाएं, उनका यशगान और उनके रूप का वर्णन है तथा साथ ही साथ आश्रयदाता राजा - रानियों के दरबार, रण - कौशल, भोग-विलास, दान - त्याग, रूप - सौन्दर्य, अखेट - विहार आदि से सम्बन्धित अनेक भावात्मक प्रशस्ति की बहुरंगी झाँकियाँ देखने को मिलती है। प्रणति एवं आराधना का भाव यहाँ अलौकिक एवं लौकिक दोनों प्रकार के आलम्बन - विधान के अन्तर्गत पाया जाता है। सारांश यह कि प्रशस्ति भाव का जितना समग्र एवं प्रभावी रूप चारण एवं भाट कवियों की रचनाओं में प्राप्त है, उतना अन्यत्र प्राप्त हो पाना सम्भव नहीं। किन्तु कठिनाई इस बात की है कि ये चारण काव्य आज अपने मूल रूप में सुलभ ही नहीं है। वीर काव्यों के अभाव की दिशा का निर्देश करते हुए पिछले पृष्ठों में इस प्रकरण पर पर्याप्त विचार किया जा चुका है। प्रशस्ति की दृष्टि से ही डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल ने राजस्थानी साहित्य पर आधृत इधर कुछ अनुसन्धान के नए आयाम उद्घाटित किए हैं और जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने एक प्रशस्ति संग्रह प्रकाशित किया है। इस संकलन में डा० कासलीवाल स्वीकार करते हैं कि हिन्दी भाषा की 68 पुस्तकों की प्रशस्तियों का संग्रह किया गया है। 15वीं शताब्दी से पूर्व की भण्डार में कोई रचना नहीं है।[1] डा० कासलीवाल का यह वक्तव्य इसलिए प्रस्तुत किया जा रहा है कि चारण कवियों की प्रशस्ति वृत्ति लौकिक और अलौकिक दोनों दृष्टियों से यद्यपि बहुत व्यापक रही है किन्तु आज के युग में जब उनकी रचनाएं ही सुलभ नहीं तो चारणों की प्रशस्तियों की प्रासंगिकता को प्रमाणिक रूप से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, फिर भी पृथ्वीराज रासो, वीसलदेव रासो, खुमान रासो, कीर्तिलता और इसके अतिरिक्त अनेकों ख्यात, वात, वार्ता जैसी पुटकल रचनाओं के साक्ष्य पर प्रशस्ति की जितनी धाराएं प्रस्तुत की गई हैं उतनी धाराएं भाषा रूप के अन्तर से जैन कवियों के रास और रासान्वयी काव्यों में भी पाई जाती है।

यहाँ विशिष्ट रूप से इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि जैनियों की दृष्टि सन्त और मुनियों की दृष्टि थी, इसलिए एक तो उनमें अलौकिक प्रशस्ति का ही प्रभाव गहरा है। द्वितीय यह भी सत्य है कि उनकी लौकिक प्रशस्तियों में जैन धर्मावलम्बी राजाओं और श्रेष्ठियों को ही आलम्बन माना गया है। सिद्धों-नाथों ने

1- महावीर ग्रन्थ माला : द्वितीय पुष्प : प्रशस्ति संग्रह : प्राक्कथन पृष्ठ - 6

केवल गणपति, सरस्वती के संक्षिप्त उल्लेख के साथ अपने गुरुओं, सिद्धों और कहीं - कहीं आदिनाथ के रूप में शंकर की महिमा के गीत गाए हैं । इस प्रकार सिद्धों - नाथों की प्रशस्ति भावना उतनी ही सीमित है जितनी सीमित उनकी रचनाएं हैं । जहां तक चारणों के प्रशस्ति भाव का प्रश्न है वह पूर्ववर्ती दोनों प्रकार की काव्यधारा से अधिक व्यापक, वैविध्यपूर्ण, स्पष्ट और जीवन से जुड़ा हुआ है । इसमें खटकने वाली सिर्फ एक ही बात है कि इनकी रचनाएं मूलरूप में दुर्लभ कम हैं ।

इस शोध - प्रबन्ध के अगले और 7वें अध्याय में विधिवत् इस बात पर विचार किया जाएगा कि आदिकाल की इस त्रिधा कविता में पाई जाने वाली प्रशस्ति - सम्पदा में कितनी संगति देखती है और इसी प्रकरण में इनके साम्य - वैषम्य पर भी विचार किया जाएगा ।

******* 0 *******